MAPA- 608

उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन (भाग- 2)

STATE ADMINISTRATION IN UTTARAKHAND

(Part- 2)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरजा प्रसाद पाण्डे निदेशक– समाज विज्ञान विद्या शाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल
प्रो0 एम0एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय , नैनीताल
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज अमरोहा	डॉ0 सूर्य भान सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्याल, हल्द्वानी, नैनीताल	
पाठ्यक्रम सम्पादन डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**पाठ्यक्रम संयोजन एंव सम्पादन** डॉ0 सूर्य भान सिंह (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डा0 भुवन तिवारी, सहायक प्राध्यापक लोक प्रशासन विभाग एम0बी0पी0जी0 कालेज, हल्द्वानी	1,4,5,7
डॉ0 घनश्याम जोशी, सहायक प्राध्यापक लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	2,6
डॉ0 कमला बोरा, सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान विभाग एस0बी0एस0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर	3

प्रकाशन वर्ष- 2022

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण: 2022

प्रकाशक: निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

अनुक्रम

खण्ड- 1 महत्वपूर्ण विभाग	
1. गृह विभाग, वित विभाग, आपदा विभाग	1 – 11
2. उत्तराखण्ड में जनजातियॉ एवं जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र	12 – 25
3. आपदा प्रबन्धन	26 – 40
खण्ड- 2 उत्तराखण्ड में कार्मिक प्रशासन	
4. राज्य लोक सेवा आयोग	41 – 47
5. भर्ती, प्रशिक्षण(एटीआई के संदर्भ में) एवम् पदोन्नति	48 – 59
6. स्थानीय स्वशासन	60 – 69
7. सांस्कृतिक एवम् भाषा विकास	70 – 78

इकाई- 1 गृह विभाग, वित्त विभाग, आपदा विभाग

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 विभाग
    1.2.1 विभाग के विभिन्न प्रकार
    1.2.2 विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र अथवा प्रदेश
    1.2.3 विभागाध्यक्ष
    1.2.4 विभागों की संरचना
    1.2.5 राजनीतिक अध्यक्ष
    1.2.6 विभाग के गठन का सिद्धान्त
1.3 गृह विभाग
    1.3.1 पुलिस बल का पुनर्गठन व आधुनिकीकरण
1.4 वित्त विभाग
    1.4.1 एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली
    1.4.2 वित्त निदेशालय के कार्य
1.5 आपदा विभाग
    1.5.1 जी0आई0एस0 डाटाबेस
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम शासन के महत्वपूर्ण विभागों का अध्ययन करने जा रहें हैं। इससे पूर्व हमने पहले भाग की इकाईयों में हमने प्रशासन के सभी तत्वों का विस्तृत अध्ययन किया है। इस इकाई में शासन की कार्यप्रणाली को संचालित करने वाले विभागों के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

'विभाग' शब्द का शाब्दिक अर्थ, सम्पूर्ण वस्तु का एक हिस्सा या अंग होता है। प्रशासन में सरकार का सारा काम अलग-अलग हिस्सों में बंटा होता है और प्रशासन की बड़ी-बड़ी इकाईयाँ इसे पूरा करने का काम करती हैं। इन इकाईयों को विभाग कहते हैं। सरकार का अधिकांश काम यही विभाग करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि विभाग देश की प्रशासनिक व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण व बुनियादी इकाई हैं।

दुनियाँ के सभी देशों में सरकार का मुख्य कामकाज विभागों के माध्यम से ही होता है। सरकार के कामकाज चलाने का यह सबसे पुराना व अनूठा तरीका है। प्राचीन और मध्य काल में भी राजा अपना काम अलग-अलग विभागों में बांट कर कराया करते थे। जिनके लिये उससे सम्बन्धित अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी और कार्य का

सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं अधिकारियों का होता था। आज भी यही प्रणाली चली आ रही है। विभागों के अलग-अलग होने का सबसे बड़ा फायदा है, प्रशासन के कार्यों का तीव्रता के साथ सम्पन्न होना।

किसी भी राज्य के शासन को सफल बनाने का महत्वपूर्ण उसके विभाग करते हैं। और हम ये भी जानते हैं कि विभाग, शासन के आदेशों को क्रियान्वित कराने में अपना योगदान देते हैं। शासन की कार्य प्रणालियों को लागू कराने का काम विभाग करते हैं। हालांकि शासन को चलाने के लिये सभी विभाग महत्वपूर्ण होते हैं लेकिन कुछ विभाग अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्जे में रखे जाते हैं, जिनमें हम वित्त विभाग, गृह विभाग व उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय व भौगोलिक आधार पर संवेदनशील राज्य के लिये आपदा विभाग को इस दर्जे में रख सकते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि खण्ड तीन की इकाई हमें इन विभागों के बारे में विस्तृत जानकारी देगी। जो विभाग और उसकी कार्य प्रणाली को समझने से सहायक होगी।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विभाग क्या है और उसकी पहचान क्या है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- विभाग कितने के प्रकार के होते हैं और महत्वपूर्ण विभाग कौन-कौन से होते हैं, इसके बारे में जान पायेंगे।
- विभाग संगठन के रूप में कैसे कार्य करता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- गृह, वित्त और आपदा विभाग कैसे कार्य करते हैं, इसकी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

1.2 विभाग

शाब्दिक अर्थ में विभाग का अर्थ, किसी बड़े संगठन अथवा इकाई का अंग है। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में 'विभाग' शब्द का एक विशेष अर्थ होता है। प्रमुख कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त कामकाज को अनेक खंडो में विभाजित कर लिया जाता है और इनमें प्रत्येक खण्ड को विभाग कहा जाता है। इस प्रकार विभाग प्रशासनिक पदसोपान में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। आधुनिक काल में विभाग के लिए प्रशासन, कार्यालय, अभिकरण, सत्ता, समिति, परिषद आदि अनेक नाम से प्रचलित हुए हैं। विभाग की दो प्रमुख पहचान है- पहला- इकाई का नाम चाहे कुछ भी हो, यदि वह प्रशासनिक सोपान के शीर्ष के समीप हो तथा उसके एवं प्रमुख कार्यकारी के बीच कोई अन्य इकाई न हो तो उसे विभाग कहेंगे। दूसरा- यदि वह इकाई प्रमुख कार्यकारी के अधीन तथा पूर्णतया उसके प्रति उत्तरदायी हो तो उस इकाई को विभाग कहा जायेगा।

1.2.1 विभाग के विभिन्न प्रकार

अपने आकार, संरचना, कार्य की प्रकृति, आन्तरिक संबंधों आदि के आधार पर विभागों में परस्पर भिन्नता होती है। आकार के आधार पर विभागों को छोटे-बड़े दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। भारत सरकार के रेलवे, डाक और तार-विभाग तथा प्रतिरक्षा विभाग बड़े विभाग हैं। इनमें लाखों कर्मचारी कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त पंजीकरण, स्थानीय स्वशासन आदि अनेक छोटे विभाग हैं जो राज्य सरकारों में होते हैं। संरचना की दृष्टि से विभागों को एकात्मक एवं संघात्मक भी कहा जाता है।

एकात्मक विभाग, वे विभाग हैं जो किसी निश्चित प्रयोजन की पूर्ति के लिए संगठित किये जाते हैं। जैसे- शिक्षा, पुलिस आदि। संघात्मक विभागों को अनेक कार्य करने होते हैं। वे वास्तव में अनेक उपविभागों के संघ होते हैं

और इनमें से प्रत्येक उपविभाग का अपना पृथक कार्य होता है। जैसे- भारत में गृह विभाग में लोक सेवाओं की नियुक्ति, अनुशासन तथा निवृत्ति, शन्ति और व्यवस्था, आदि विषयों का प्रबन्ध आता है।

1.2.2 विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र अथवा प्रदेश

प्रत्येक देश में विभागीय संगठन का एक आधार प्रदेश अथवा भौगोलिक क्षेत्र होता है तथा कुछ विभाग ऐसे होते हैं, जिनका संगठन इसी आधार पर किया जाता है। प्रत्येक देश का विदेश सम्बन्ध विभाग भौगोलिक आधार पर संगठित किया जाता है, ताकि उन देशों के साथ सम्बन्ध रख सके जो उसकी सीमाओं से बाहर हैं। इस विभाग के प्रादेशिक उप-विभाग भी होते हैं। सन् 1947 में पहले भारत कार्यालय भी इसी आधार पर बनाया गया था। भारत में विदेश मंत्रालय का संगठन भी इसी आधार पर किया गया है।

1.2.3 विभागाध्यक्ष

विभागीय संगठन में अध्यक्ष अथवा सर्वोच्च अधिकारी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि वही समूचे विभाग के निर्देशन और नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होता है। अतः विभाग का अध्यक्ष पद एक महत्वपूर्ण संगठनात्मक समस्या उत्पन्न करता है। इस समस्या के दो अंग हैं। पहला- अध्यक्ष एक अकेला व्यक्ति अर्थात् एकल होना चाहिये, अथवा बहुल निकाय, जैसे कि मंडल अथवा आयोग। दूसरा- विभागाध्यक्ष में प्रशासनिक योग्यता एसी होनी चाहिये जैसे प्रबन्ध, तकनीकी योग्यता, विभाग की क्रियाओं के विषय में तकनीकी ज्ञान।
भारत में आमतौर पर विभागाध्यक्ष एकल व्यक्ति होता है। विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष एक मंत्री तथा प्रशासनिक अध्यक्ष एक सचिव होता है। हमारे यहाँ कुछ विभागों का अध्यक्ष मंडल अथवा आयोग के रुप में होता है। जैसे- आयात-निर्यात कर, आयकर, केन्द्रीय आबकारी आदि विभागों की अध्यक्षता तथा नियंत्रण 'बोर्ड ऑफ डायरैक्ट टैक्सिज' करता है। राज्यों में भी राजस्व, शिक्षा, बिजली आदि विभागों के लिए मंडल बनाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में विभाग के भीतर कार्य करने वाले दो प्रकार के मंडल हैं- प्रशासनिक मंडल और परामर्शकारी मंडल।

1.2.4 विभागों की संरचना

एक ही देश के भीतर विभिन्न विभागों की संरचना अलग-अलग प्रकार की हो सकती है। परन्तु, यह भेद अथवा अन्तर या विविधता केवल बारीक बातों में ही होती है। मोटे तौर पर विभागीय संगठन का एक सामान्य ढाँचा होता है तथा सब जगह प्रायः उसी का अनुसरण किया जाता है। भारत में संघ तथा राज्य सरकारों का कार्य अनेक मंत्रालयों में विभाजित कर सकते है। भारत सरकार अथवा राज्य सरकारों में मंत्रिमंडलों की रचना आमतौर पर तिमंजले मकान की तरह होती है। जिसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

1. विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष अर्थात् मंत्री सबसे ऊपर होता है और उसके नीचे एक या अनेक राज्यमंत्री अथवा संसदीय सचिव होते हैं जो काम में उसकी सहायता करते है।
2. सचिवालय संगठन अथवा सम्बन्धित कार्यालय होते हैं, जिनका अध्यक्ष एक स्थायी प्रशासनिक अधिकारी होता है, जिसे आमतौर पर सचिव कहा जाता है।
3. मंत्रालय के भीतर विभाग अथवा विभागों का कार्यकारी संगठन होता है। इस कार्यकारी संगठन का अध्यक्ष आमतौर पर निर्देशक, महानिदेशक आदि नामों से पुकारा जाता है।

1.2.5 राजनीतिक अध्यक्ष

मंत्री, उसके उपमंत्री तथा संसदीय सचिव ये सब राजनीतिक अधिकारी होते हैं, जो मंत्रिमंडल के साथ बदलते रहते हैं। ये पद अपने दल के भीतर अपनी शक्ति और स्थिति के कारण प्राप्त करते हैं, किसी विशेष योग्यता के आधार पर नहीं। विभागीय मंत्री तीन प्रकार के कार्य करता है-

1. उन व्यापक नीतियों का निमार्ण करता है, जिसके अनुसार विभाग को कार्य करना होता है और विभाग के भीतर उठने वाले नीति सम्बन्धी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में निर्णय करता है।
2. वह विभाग द्वारा नीतियों के क्रियान्वयन पर सामान्य अधीक्षण करता है।
3. वह अपने विभाग की नीति तथा उसके प्रशासन के बारे में संसद के सामने स्पष्टीकरण देता है और उत्तरदायी होता है। वह इस बारे में प्रश्नों के उत्तर देता है, आवश्यक विधेयक प्रस्तुत करता है तथा दूसरे विभागों के सन्दर्भ में एवं जनता के सामने अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। उसके उपमंत्री तथा संसदीय सचिव आदि उसके द्वारा सौंपे कार्य को पूरा करते हैं तथा जब वह संसद में स्वयं उपस्थित नहीं होता है तो वहाँ उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतंत्र में प्रशासन का संचालन मूलतः राजनीतिक अध्यक्षों के द्वारा किया जाता है।

1.2.6 विभाग के गठन का सिद्धान्त

सुचारु रुप से प्रशासन चलाने के लिए सरकार के काम को बाँटना जरुरी है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने काम के बँटवारे के लिए दो आधार सुझाए थे। एक व्यक्तियों या वर्गों के अनुसार, दूसरा सेवाओं के अनुसार।

लूथर गुलिक के अनुसार आधुनिक युग में विभागों के गठन के लिए चार सिद्धान्तों या आधार अपनाए जाते हैं। ये आधार हैं- उद्देश्य(Purpose), प्रक्रिया(Process), व्यक्ति(Person) और स्थान(Place)। लूथर गुलिक ने इसे '4-P' का फार्मूला कहा। इन प्रत्येक का विवरण निम्न है-

1. **उद्देश्य-** अधिकांश देशों में सत्ता के किसी खास काम या उद्देश्य के लिए एक विभाग बनाया जाता है। उदाहरण के लिए- देश की रक्षा के लिए रक्षा विभाग बनाया गया, लोगों की स्वास्थ्य की देखभाल के लिए स्वास्थ्य विभाग और उन्हें शिक्षित करने के लिए शिक्षा विभाग का गठन किया गया। ज्यादातर देशों में अधिकतर विभाग उद्देश्य पर ही आधारित होते हैं। विभागों के गठन का यह बहुत आसान, बहुत आम और बहुत कारगर सिद्धान्त है। इससे काम में दोहरापन नहीं आता और इसे समझना भी आसान है। यदि विभागों का गठन विशेष उद्देश्य या विशेष काम को पूरा करने के लिए किया जाए तो आम आदमी आसानी से बता सकता है कि कौन सा काम किस विभाग के जिम्मे है।
2. **प्रक्रिया-** प्रक्रिया का अर्थ किसी तकनीक, किसी दक्षता या विशेष प्रकार के पेशे से है। उदाहरण के लिएः लेखांकन, टंकण, आशुलिपि, इंजीनियरी और कानूनी सलाह आदि ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनकी आमतौर पर सभी सरकारी संगठनों में जरुरत पड़ती है। सभी संगठनों को लेखांकन, टंकण, आशुलेखन, भवन, कानूनी सलाह, लेखांकन की आवश्यकता होती है। अतः कुछ देशों में अलग-अलग प्रक्रियाओं के आधार पर अलग-अलग विभाग बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए विधि विभाग, लोक निर्माण विभाग या लेखा विभाग बनाए जाते हैं जो अन्य सभी विभागों की मदद करतें है और उनकी विशेष जरुरतों को पूरा करते हैं। लेकिन प्रक्रिया पर आधारित विभागों की संख्या गिनी-चुनी होती है। यदि विभागों का गठन प्रक्रिया के आधार पर किया जाए तो विशेषज्ञता और नवीनतम तकनीकी दक्षता सबको उपलब्ध करायी जा सकेगी। प्रशासन में अधिकतम किफायत, बेहतर तालमेल और एकरुपता आयेगी। इसके साथ ही

साथ प्रक्रिया पर आधारित विभागों के कर्मचारियों में घमंड, संकीर्णता और श्रेष्ठता की भावना पैदा हो जायेगी। फिर भी सभी देशों में कुछ विभाग प्रक्रिया के आधार पर बनाए जाते हैं।

3. **व्यक्ति-** प्रत्येक समाज में कुछ व्यक्ति या समूह होते हैं, जिनकी समस्याएँ, विशेष और सबसे अलग होती हैं और जिन्हें विशेष सेवाओं की जरुरत पड़ती है। उदाहरण के लिए शरणार्थी, आदिवासी, अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के लोग, दिव्यांग और पेंशन भोगी आदि। कुछ देशों में कुछ सरकारी विभाग विशेष तौर पर कुछ विशेष समूहों या व्यक्तियों की सभी समस्याओं से निपटने के लिए बनाए जाते हैं। पुर्नवास विभाग, आदिवासी कल्याण विभाग, पेंशनर विभाग, समाज कल्याण विभाग या श्रम विभाग आदि उन विभागों के उदाहरण हैं, जिनका गठन व्यक्तियों के आधार पर किया जाता है। सम्बद्ध समूह या व्यक्ति इन विभागों से आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं और यह विभाग भी व्यवस्थित और समन्वित रुप से सभी प्रकार की सेवाएँ उन्हें कारगर ढंग से उपलब्ध करा सकते हैं। लेकिन विशेष समूहों के लिए विशेष विभागों की स्थापना से उन विभागों में इन समूहों के निहित स्वार्थ विकसित हो जाते हैं और वे प्रशासन पर दबाव डालने की कोशिश करते हैं। फिर भी अनेक देशों में समूहों या व्यक्तियों के आधार पर कुछ विभागों का गठन किया ही जाता है।
4. **स्थान-** प्रत्येक देश में कुछ इलाका, प्रदेश या क्षेत्र ऐसा होता है, जिसकी अपनी विशेष समस्याएँ होती है, जिनके कारण उसे विशेष ध्यान और विशेष सेवाओं की जरुरत होती है। अतः उस क्षेत्र विशेष के लिए अलग विभाग का गठन किया जाता है। इस तरह के विभाग का सबसे बढ़िया उदाहरण आजादी से पहले अंग्रेज सरकार द्वारा भारतीय मामलों के विभाग का गठन था। आज भी ब्रिटेन में स्काटलैंड और आयरलैंड के मामलों के लिये अलग-अलग विभाग हैं। भारत सरकार का विदेश मंत्रालय भी ऐसे विभागों का एक उदाहरण है। कई विभागों को अलग-अलग प्रभागों में बाँट दिया जाता है जो अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों की देखभाल करते हैं। उदाहरण के लिए रेल विभाग के कई क्षेत्रीय मंडल हैं। जैसे- पश्चिम रेलवे, मध्य रेलवे, दक्षिण रेलवे या दक्षिण मध्य रेलवे इत्यादि। भारत में क्षेत्र या स्थान विशेष के लिए गठित विभागों की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार हमने देखा कि विभागों के गठन के लिए चार मुख्य सिद्धान्त या आधार है- उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान। प्रत्येक सिद्धान्त के अपने-अपने फायदे और नुकसान है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विभागों के गठन के लिए कौन से सिद्धान्त या आधार को सर्वोत्तम माना जाये। यह प्रश्न जितना सहज है, उसका उत्तर उतना ही कठिन है। वास्तव में विभागों का गठन किसी एक सिद्धान्त के आधार पर नहीं किया जाता। प्रशासनिक सुविधा तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार विभागों के गठन के लिए विभागीकरण के चारों सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है। कोई एक सिद्धान्त सर्वोत्तम नहीं है। चारों सिद्धान्त एक-दूसरे के पूरक हैं और विभागों के गठन के लिए सभी देशों में इन सबका प्रयोग किया जाता है।

यह बात हम जान चुके हैं कि किसी भी शासन व्यवस्था में विभाग कितने महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शासन को चलाने के लिये सभी विभाग महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन कुछ विभाग अति महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे- गृह, वित्त, कार्मिक व आपदा विभाग व अन्य। यहाँ हम गृह, वित्त व आपदा विभाग के बारे में उत्तराखण्ड के सन्दर्भ में चर्चा करेंगे।

1.3 गृह विभाग

कानून व्यवस्था की स्थिति दीर्घकालीन समग्र विकास को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। उत्कृष्ट कानून व्यवस्था प्रगति तथा सुखमय जन-जीवन की बुनियादी जरूरत है और यह उपलब्धि आज के सन्दर्भ में उत्तराखण्ड

राज्य की प्रमुख विशेषता है। लेकिन बदलते परिवेश में कानून व्यवस्था की चुनौतियाँ सभी जगह विद्यमान हैं। राज्य गठन के बाद सरकार ने उत्तराखण्ड में अपराधों की रोकथाम तथा अमन चैन कायम रखने के लिये कारगर प्रयास कर परम्परागत छवि से हटकर मित्र पुलिस बल की स्थापना पर जोर दिया। राज्य में पुलिस बल के आधुनिकीकरण के साथ महिला हैल्पलाईन की भी स्थापना राज्य में की गयी। कारागार विभाग, होमगार्ड्स के कल्याण हेतु नई नीतियों के साथ ही इनका समुचित प्रयोग किया गया।

हम जानते हैं कि गृह, कारागर प्रशासन एवं सुधार विभाग मुख्य रुप से कानून व्यवस्था को चुस्त एवं दुरुस्त बनाए रखने हेतु उत्तरदायी हैं। इन विभागों में नीति विषयक निर्णय कराने, बजट तैयार कर विधायिका से अनुमोदन के पश्चात धनराशि अवमुक्त करने, सी0आई0डी0 को प्रकरण सन्दर्भित करने, दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन का निर्णय लेने, शस्त्र लाईसेंसों की सीमा विस्तार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से प्राप्त मामलों का अनुश्रवण करने, राज्य मानवाधिकार आयोग से सम्बन्धित कार्यों को सम्पादित करने, विधानसभा/विधान परिषद में प्रश्नों के उत्तर देने, भारत सरकार से पुलिस सम्बन्धी मामलों में समन्वय तथा राज्य में कानून व्यवस्था से सम्बन्धित कार्यों का निष्पादन करते हैं।

विभाग द्वारा नागरिकों, अति विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण अधिष्ठानों की सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है। पुलिस एवं कारागार प्रशासन विभाग में पुलिस आधुनिकीकरण योजना एवं कारागार आधुनिकीकरण योजना के अर्न्तगत नीति निर्धारण, बजट व्यवस्था एवं व्यय का अनुश्रवण मुख्य कार्य है।

उपरोक्त कार्यों को सम्पादित करने हेतु प्रमुख सचिव के सहायतार्थ सचिव, विशेष सचिव, ओ0एस0डी0 एवं उप/अनुसचिव कार्यरत है। विभागाध्यक्ष स्तर पर पुलिस महानिदेशक के अतिरिक्त, महानिदेशक (अभियोजन), महानिदेशक (सी0बी0सी0आई0डी0), महानिदेशक (अग्निशमन सेवाएं), महानिदेशक(तकनीकी सेवाएं), महानिदेशक (प्रशिक्षण सेवाएं), महानिदेशक (विशेष जांच) एवं महानिदेशक (कारागार एवं सुधार विभाग) नियुक्त हैं। अपर पुलिस महानिदेशक स्तर के अधिकारी के अधीन भ्रष्टाचार निवारण संगठन कार्यरत हैं, जिन्हें इस कार्यालय में प्राप्त शिकायतें सन्दर्भित की जाती हैं।

1.3.1 पुलिस बल- पुनर्गठन व आधुनिकीकरण

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद राज्य के पुलिस बल के ढाँचे में उत्तर-प्रदेश से हट कर नये तरीके से तैयार किया गया। राज्य की संवेदनशील सीमाओं पर पुलिस की विषेश टुकड़ियां तैनात की गयी है। राज्य के गठन के बाद से 4000 आरक्षी, 253 पुलिस उप निरीक्षक, 450 भूतपूर्व सैनिक, एक इण्डिया रिजर्व बटालियन, दो कम्पनी महिला सशस्त्र बल व 334 महिला आरक्षी की भर्ती कर पुलिस बल का पुनर्गठन किया गया। यह विभाग का आरम्भ था। देश की भौगोलिक स्थितियों को देखते हुए गृह विभाग पर सरकार का विशेष ध्यान रहा। राज्य की स्थापना के बाद 17 नये थाने तथा 17 नई चौकियां की स्थापना की गयी। साथ ही केन्द्र सरकार की पुलिस आधुनिकीकरण योजना के अधीन नई संचारण क्षमता उपलब्ध कराई गयी। आधुनिक अस्त्र–शस्त्र, उपकरणों ,अपराध विवेचना के नवीन संसाधनों, आधुनिक संचार साधनों से विभाग का व समस्त कर्मचारियों का सुदृढ़ीकरण किया गया है। इसके साथ ही प्रत्येक जिले में महिला हैल्प लाईन व प्रत्येक जिले में महिला डैक्स की स्थापना की गयी है जो महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं के त्वरित निवारण पर अपना सहयोग प्रदान करते हैं। विभाग को सूचना संचार के साधनों से आधुनिक बनाया गया है, जिसके लिये राज्य में उपलब्ध सभी संचार प्रणालियों को एकीकृत कर सहतरंग नामक एकल संचार योजना क्रियान्वित की गयी है। इस कार्य में केन्द्रीय सुरक्षा बलों व भारतीय संचार निगम लिमिटेड को भी शामिल किया गया है। भारत-नेपाल की सीमा, जो राज्य से मिलती है उसकी संवेदनशीलता को देखते हुए

भारत सरकार द्वारा इस सीमा का प्राथमिक प्रबंधन सशस्त्र सीमा बल को सौंपा गया है। बल को इस कार्य में सहयोग की दृष्टि से सीमा से 15 किलोमीटर क्षेत्र में तलाशी एवं जब्ती के अधिकार भी दिये गये हैं।

1.4 वित्त विभाग

किसी भी राज्य का वित्त विभाग केन्द्र की भाँति उस राज्य के वित्त मंत्रालय के अधीन होता है। मंत्रालय का काम बजट बनाना और इसे लागू करवाना होता है। वित्त विभाग राज्य के सभी विभागों के लेखा-जोखा व आहरण वितरण का संचालन करता है। विभिन्न विभागों के अधिकारी अपने विभागों के विभिन्न प्रस्तावों व योजनाओं के लिये अनुमानित धनराशि का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं। विभागों का यह लेखा या हिसाब-किताब निश्चित अवधि में महालेखाकार के लेखों से मिलाया जाता है। यह काम विभिन्न राजकोषों से हर पखवाड़े पर मिले लेखों के आधार पर किया जाता है। इन सभी कार्यों को वित्त विभाग के सहयोग से ही पूरा किया जाता है। वित्त विभाग किसी भी राज्य का सबसे महत्वपूर्ण विभाग होता है।

उत्तराखण्ड राज्य गठन के साथ ही राज्य की वित्त व कोषागार सेवाओं को स्थापित किया गया। वित्त विभाग का नियंत्रक वरिष्ठतम् अधिकारी होता है, जो वित्त सेवा से चयनित होता है। राज्य के राजकीय आहरण और वितरण का निरीक्षक व नियंत्रक राज्य का वित्त निदेशालय होगा। निदेशालय राज्य के सभी सरकारी विभागों के आहरण व वितरण की जिम्मेदारी कोषागार व उप कोषागारों को देता है। राज्य का वित्तीय निदेशालय देहरादून में है। उत्तराखण्ड राज्य कुशल वित्तीय प्रबन्ध के प्रयास में सफल हो रहा है। सरकार करों के बिना विकास योजनाओं के लिये नये स्रोतों से संसाधन जुटाने का प्रयास किया है जिससे राज्य के आम जन पर अतिरिक्त भार नहीं पड़ा है। वित्त विभाग द्वारा प्रयास किये गये कि कार्मिकों व पेंशन भोगियों को नियत समय पर भुगतान किया जा सके। सरकार द्वारा शासकीय लेन-देन की व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक से समझौता कर स्टेट बैंक को एजेंट के रूप नियुक्त किया गया और वित्तीय संस्थाओं को कम्प्यूटरीकृत कर दिया गया है। सरकार आम जन को सुविधा देने के लिये वित्त विभाग के कर्मचारियों को आधुनिक प्रशिक्षण समय-समय पर दे रही है, जिससे वित्त विभाग की दक्षता बढ़ी है। सरकार ने ऐसे प्रयास किये हैं कि राज्य के सभी कोषागार व उपकोषागार पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत हैं और एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। वर्तमान में वित्त विभाग की संरचना को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है- राज्य का डाटा केन्द्र (देहरादून में) 13 जिला कोषागार, 14 उच्चीकृत कोषागार, 02 आहरण और लेखा विभाग, 60 उपकोषागार, 02 नोडल केन्द्र नॉन पोस्टल स्टाम्प।

1.4.1 एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली

कोषागार व्यवस्था तथा केन्द्र सरकार की विभागीय वेतन एवं लेखा कार्यालय की व्यवस्था पर किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला कि राज्य सरकार, ग्रामीण स्तर तक नियुक्त होने के कारण प्रत्येक विभाग के वेतन और लेखा कार्यालय का बड़ा नेटवर्क है, जिससे अनावश्यक व्यय होने के साथ-साथ भुगतान में भी विलम्ब होता है। इन कमियों को दूर करने के लिये सरकार ने राज्य में एकीकृत भुगतान एवं लेखा-प्रणाली लागू की, जिससे सरकारी कार्यालयों के कर्मचारियों के लिये ई-पेरोल व्यवस्था शुरू की गयी। जिसका फायदा राज्य कर्मचारियों को मिल रहा है। इस व्यवस्था से निम्न लाभ प्राप्त हुए हैं-

1. उत्तराखण्ड ऐसा पहला राज्य है, जहाँ कम्प्यूटर पर आधारित एकीकृत भुगतान एवं लेखा-प्रणाली लागू की गयी है।

2. बैंकों के नेटवर्किंग के फलस्वरूप उपलब्ध कोर बैंकिंग की सेवाओं का एकीकृत भुगतान व लेखा-प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है। जिससे दूर-दराज के कर्मचारियों को लाभ प्राप्त हो रहा है और वो त्वरित भुगतान की सुविधा ले रहे हैं।
3. प्रत्येक कोषागार में सरकारी कार्यालयों के कर्मचारियों की सेवा तथा वेतन सम्बन्धी विवरण का डाटा बेस बैंक निर्मित किया गया है, जिससे कर्मचारी अपनी वेतन सम्बन्धी मामलों को इन्टरनेट के माध्यम से देख व समझ सकता है।
4. भुगतान की समस्त सूचना इन्टरनेट में सरकारी साईट पर उपलब्ध है।

1.4.2 वित्त निदेशालय के कार्य

राज्य में वित्तीय कार्यों के लिये वित्त विभाग द्वारा एक निदेशालय का गठन किया गया है, जिसका कार्य राज्य में समस्त सरकारी विभागों का वित्त सम्बन्धी लेखाओं का संचालन करना होता है। इसके कार्यों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. निदेशालय के द्वारा राज्य सरकार के समस्त भुगतान आहरण-वितरण अधिकारी के माध्यम से किये जाते हैं।
2. राज्य सरकार की समस्त प्राप्तियां बैंकों के माध्यम से निदेशालय के निर्देशन से की जाती हैं।
3. निदेशालय राज्य सरकार की तरफ से मूल्यवान वस्तुओं का रख-रखाव करता है।
4. इसके साथ ही निदेशालय राज्य में गैर-पोस्टल स्टाम्प का भण्डारण व विक्रय का कार्य करता है।
5. निदेशालय समस्त श्रेणी के पेंशनरों के पेंशन वितरण का कार्य करता है।
6. एकीकृत लेखा एवं भुगतान कार्यालय के माध्यम से राज्य कर्मचारियों को वेतन एवं भत्तों का भुगतान करना।
7. सोसाइटी एक्ट-1860, साझेदारी अधिनियम-1932 के अन्तर्गत संस्थाओं का पंजीकरण एवं अन्य सम्बन्धित कार्य करना।
8. स्वायत्तशासी संस्थाओं/स्थानीय निकायों के वैयक्तिक लेखों का रख-रखाव करना।
9. निर्माण विभागों की भुगतान धनराशि व डेविड-क्रेडिट सम्बन्धी लेखा का ब्यौरा रखना।
10. विभागों की प्राप्तियों की वापसी का विवरण रखना।
11. आहरण-वितरण अधिकारियों का बजट नियंत्रण ।
12. कर्मचारियों की सेवानिवृति पर सामूहिक बीमा निधि का भुगतान करना।
13. चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की सामान्य भविष्य निधि के रख-रखाव का ब्यौरा रखना।

1.5 आपदा विभाग

क्षेत्र की भौगोलिक, भूगर्भाय एवं पारिस्थितिकीय संरचना उत्तराखण्ड राज्य को प्राकृतिक एवं मानवीय परिर्वतनों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील बनाती है। यही इस क्षेत्र की आपदाओं का मुख्य कारण भी है। भूकम्प की दृष्टि से राज्य के चार जिले अति संवेदनशील जोन- 5 व पांच जिले संवेदनशील जोन- 4 में आते हैं। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए उत्तराखण्ड गठन के बाद सरकार द्वारा आपदा प्रबन्ध विभाग की स्थापना की गयी। आपदा विभाग द्वारा आपदा प्रबन्ध को व्यावहारिक बनाने के लिये प्रदेश के आपदा प्रबन्ध तंत्र को इस प्रकार विकसित किया गया है कि आपदा प्रबन्ध में राज्य एवं जनपद स्तरीय अधिकारियों/कर्मचारियों के अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं, गैर-सरकारी संगठनों, जनप्रतिनिधियों एवं जनसामान्य की स्पष्ट भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।

राज्य स्तर पर देहरादून में विभाग ने 'आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र' की स्थापना सचिवालय परिसर में की गयी है। इस केन्द्र का ध्येय जागरूकता, सूचना, प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता एवं क्षमता विकास के माध्यम से राज्य में आपदाओं के जीवन एवं पर्यावरण सुरक्षा हेतु एक ऐसे तंत्र की स्थापना करना जो कि राज्य की आपदाओं के प्रति संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए आपदा से पूर्व, आपदा के समय एवं आपदा के पश्चात की गतिविधियों का संसाधनों के अधिकतम सम्भव उपयोग के साथ सुचारू व समयबद्ध तरीके से क्रियान्वयन सुनिश्चित कर सकें। आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है। केन्द्र नई तकनीकी के प्रयोग से आपदा सम्बन्धी जानकारी को पहले ही देने में सक्षम है। केन्द्र ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क में रहता है जो आपदा प्रबन्धन के कार्यों में लगे रहते हैं तथा अनुभवी होते हैं। आपदा विभाग की संरचना को निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

1. मुख्य सचिव (ई0 सी0)- अध्यक्ष
2. प्रमुख सचिव, वित्त, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
3. प्रमुख सचिव, गृह, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
4. प्रमुख सचिव, राजस्व, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
5. प्रमुख सचिव, आपदा प्रबन्धन, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
6. प्रमुख सचिव, सिंचाई, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
7. निदेशक, उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल- सदस्य
8. आयुक्त रिलिफ, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
9. कार्यकारी निदेशक,आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र- सचिव/ सदस्य

कार्यकारी समिति के सदस्य

1. प्रमुख सचिव/सचिव आपदा प्रबन्धन, उत्तराखण्ड सरकार- अध्यक्ष
2. निदेशक उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल- सदस्य
3. कार्यकारी निदेशक,आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र- सचिव/ सदस्य
4. अपर सचिव, वित्त, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य

1.5.1 जी0आई0एस0 डाटाबेस

विभिन्न प्रकार के आधारित संरचना के डाटाबेस एक महत्वपूर्ण साधन हैं, जिसके द्वारा आपदा से बेहतर तरीके से निपटा जा सकता है। इसके लिये आपदा विभाग ने जी0आई0एस0(ज्योग्रैफिकल इन्फॉर्मेशन सिस्टम) के द्वारा सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है। आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र द्वारा सेटेलाईट से प्राप्त डाटा (सूचनाएं) का प्रयोग आपदा से निपटने में कर रहा है। आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र के द्वारा निम्न विषयों पर आधारिक संरचना एकत्रित की जा चुकी है- निकासी व्यवस्था(नालियों की), आवास, सड़कें ,सिंचाई, स्वास्थ्य संगठन, पुलिस एवं राजस्व पुलिस संरचना, बेहतर संचार व्यवस्था और एफ0 सी0 आई0 गोदाम आदि।

राज्य में आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र की इकाईयां निम्न स्थानों पर हैं- 1. अल्मोड़ा, 2. बागेश्वर, 3. चमोली, 4. चम्पावत, 5. देहरादून, 6. हरिद्वार, 7. नैनीताल, 8. पौड़ी, 9. पिथौरागढ़ 10. रूद्रप्रयाग, 11. टिहरी, 12. उत्तरकाशी, 13. उधम सिंह नगर।

राज्य के सभी जिलों में आपदा विभाग द्वारा केन्द्र स्थापित किये हैं, जो आपदा के समय अपनी सेवा प्रदान करते हैं। ये केन्द्र जनपद में विभिन्न विभागों के प्रशिक्षित कार्मिकों का क्षेत्रवार विवरण तथा कार्य-क्षेत्र निर्धारण, खोज व बचाव दल जिन्हें आपदा प्रबन्ध द्वारा प्रशिक्षित किया गया है एवं चिन्हित किया गया है, उनकी सूची आपदा

प्रबन्ध विभाग के पास उपलब्ध कराता है। साथ ही केन्द्र जिला इकाईयों के साथ मिल कर जागरूकता कार्यक्रम को प्रशासन के निर्देशानुसार तैयार करता है तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है। आज हम देख रहे हैं कि निरन्तर पर्यावरण असंतुलित हो रहा है और जिस तरह पर्यावरण असंतुलित हो रहा है, उसी तरह प्राकृतिक आपदाओं का स्वरूप भी बदल रहा है। ये सब ध्यान में रखते हुए आम लोगों को खतरों के प्रति जागरूक किया जा सकता है। जिसके लिये आपदा विभाग का गठन किया गया है। आपदा विभाग के गठन के बाद से राज्य आज आपदा से बचाव के लिये तरह-तरह के कार्यक्रम चला रहा है। जिससे राज्य सरकारों को आपदा से निपटने के लिये सहायता मिल रही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संरचना की दृष्टि से विभागों को दो भागों में बांटा जाता है, उनके नाम बताएँ।
2. विभाग के भीतर कार्य करने वाले दो प्रकार के मंडलों के नाम बताएँ।
3. लूथर गूलिक ने विभागों के गठन के लिए कौन सा फार्मूला दिया?
4. उत्तराखण्ड राज्य का वित्तीय डाटा केन्द्र कहाँ है?
5. राज्य का आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र कहाँ स्थित है?
6. जी0आई0एस0 का पूरा नाम क्या है?

1.6 सारांश

किसी भी शासन व्यवस्था का पहला गुण वहाँ की कार्यप्रणाली का आवंटन होता है। कार्य को क्रियान्वित करना विभागों के जिम्मे होता है। शासन के समस्त कार्यों को अलग-अलग विभागों द्वारा किया जाता है। इस इकाई में हमने शासन के सबसे महत्वपूर्ण विभागों- गृह विभाग, वित्त विभाग व उत्तराखण्ड राज्य के लिये सबसे अधिक महत्व रखने वाला आपदा विभाग का अध्ययन किया। इस अध्याय में राज्य के गृह विभाग की विस्तृत चर्चा की गयी तथा राज्य के पुलिस व्यवस्था का अध्ययन किया गया। इसी के साथ राज्य के वित्त विभाग के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया गया। आपदा प्रबन्ध विभाग राज्य में कैसे काम कर रहा है, इसकी भी चर्चा इस अध्याय में की गयी।

1.7 शब्दावली

जी0आई0एस0- ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम, 4-पी- उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति, स्थान, राजनीतिक अध्यक्ष- किसी विभाग का मंत्री उस विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष होता है

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एकात्मक और संघात्मक, **2.** प्रशासनिक मंडल और परामर्शकारी मंडल, **3.** 4-पी, **4.** देहरादून, **5.** देहरादून, **6.** ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक प्रशासन- अवस्थी व माहेश्वरी।
2. उत्तराखण्ड एक सम्पूर्ण अध्ययन- वी0डी0 बलूनी।
3. वार्षिक रिपोर्ट, सन्तुलित, समयबद्ध व समग्र विकास- उत्तराखण्ड शासन।
4. पहाड़ पत्रिका- शेखर पाठक, संपादक, नैनीताल।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. उत्तरांचल समग्र अध्ययन- सविता मोहन व हरीश यादव।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विभाग से आप क्या समझते हैं? विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र व गठन के सिद्धान्त को समझाए।
2. उत्तराखण्ड राज्य के गृह विभाग की विस्तृत रुप से व्याख्या कीजिए।
3. वित्त विभाग के क्या-क्या कार्य है, विस्तार से बताएं।
4. उत्तराखण्ड राज्य के आपदा प्रबन्धन पर निबन्ध लिखिए।

इकाई- 2 उत्तराखण्ड की जनजातियां एंव जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्तराखण्ड की जनजातियां
2.3 जनजातीय विकास हेतु योजनाएं
    2.3.1 जनजातीय विकास में पंचवर्षीय योजनाएं
    2.3.2 अनुसूचित जनजातियों के लिये चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं
    2.3.3 उत्तराखण्ड में चल रही कल्याणकारी व विकासन्मुख योजनाएं
2.4 जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र
    2.4.1 औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक तंत्र
    2.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का प्रशासनिक तंत्र
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

भारत वर्ष में फैले लगभग 450 जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 342 के तहत अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है। वर्तमान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगभग 6 करोड़ 70 लाख है, जो भारत की पूरी आबादी का 8.08 प्रतिशत है। यानि प्रत्येक 100 भारतीय नागरिकों में से 08, जनजाति समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुसूचित जनजातियां देश के विभिन्न भागों में वितरित हैं और इनकी प्रमुख विशेषता है इनकी विविधता। भौगोलिक वितरण के आधार पर सम्पूर्ण जनजाति समूहों को पांच मुख्य क्षेत्रों में बांटा जा सकता है- 1. उत्तर पूर्व भारत, 2. उप हिमालयी क्षेत्र, 3. मध्य एवं पूर्व भारत, 4. दक्षिण भारत, 5. पश्चिमी भारत।
इस विभाजन के अन्तर्गत उत्तराखण्ड क्षेत्र, उप हिमालयी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। वर्ष 1967 से पूर्व संयुक्त उत्तर प्रदेश में किसी भी समूह को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। जून 1967 में भारत सरकार द्वारा थारू, बुक्सा, जौनसारी, भोटिया तथा राजि जनजातियों समूहों (वर्तमान में उत्तराखण्ड में निवास) को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जनजातीय समाज के विषय में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड की जनजातीयों के विषय में विस्तार से अध्ययन कर पायेंगे।
- जनजातियों के विकास से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में जान पायेंगे।

- जनजातियों के लिए गठित प्रशासनिक तंत्र के विषय में जान पायेंगे।

2.2 उत्तराखण्ड की जनजातियां

सन् 1967 से पूर्व उत्तराखण्ड में निवास करने वाली जनजातियों की जनजाति के रूप में पहचान न मिलने के कारण उन्हें जनजाति होने का अधिकार प्राप्त नहीं था। जून 1967 में भारत सरकार ने उत्तराखण्ड की पांच जनजातियों- थारू, बुक्सा, जौनसारी, भोटिया और राजि(वन रावत) को जनजाति का दर्जा दिया। उत्तराखण्ड की जनजातियां पहाड़ों के दुर्गम से अति दुर्गम क्षेत्रों से लेकर तराई-भाभर के क्षेत्रों तक निवास करती है। ये उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों तक फैल गये हैं। जहाँ एक और भोटिया जनजाति ने शिक्षा प्राप्त कर राज्य के विभिन्न प्रशासनिक पदों पर आसीन होकर अपना आर्थिक और सामाजिक तौर पर सशक्तिकरण किया वहीं दूसरी और राजि (वन रावत/रजवार) जनजाति अपने अस्तित्व के लिए संर्घष कर रही है। उत्तराखण्ड के पिथोरागड़ और चम्पावत के 10 गांवों में 700 की संख्या के करीब यह जनजाति अशिक्षा, अस्वस्थता और बेरोजगारी से जूझ रही है और यदि सरकार ने इस जनजाति की ओर ध्यान नहीं दिया तो विलुप्त होने की कगार पर खड़ी है। उत्तराखण्ड की इन जनतातियों का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

2.2.1 थारू जनजाति

थारू जनजाति उधम सिंह नगर जिले के खटीमा व सितारगंज क्षेत्रों में निवास करती है। उनके 142 गांव हैं, किन्तु 88 ही गांव ऐसे हैं जहाँ पूर्ण अबादी थारुओं की है या थारु बहुल हैं। थारू जनजाति की संख्या में उतार-चढ़ाव देखने की मिलता रहता है। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इनकी संख्या में वृद्धि तथा इनका क्षेत्र विकास भी हुआ। थारू अपने आपको चित्तौड़ के महाराणा प्रताप के वंशज मानते हैं तथा 'राणा' उपजाति का प्रयोग भी करते हैं। आज स्वयं थारू समाज के वृद्ध पुरूष और स्त्रियाँ इस कथन को स्वीकार करते हैं कि थारू स्त्रियाँ वास्तव में राजघराने से सम्बन्धि थीं। थारू जनजाति में अनेक उपजातियाँ पायी जाती हैं। इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रिति-रिवाज-** थारू जनजाति के रीति-रिवाज भी अपने आप में अनूठे हैं। इनकी वेश-भूषा गहरे रंगों से बने कपड़ों की होती है। कुछ महिलायें कोटी भी पहनती हैं, जिनका अग्र भाग सिक्कों से सजा रहता है। इनकी पोशाकों में कलात्मकता होती है। थारू पुरुष अपनी पारम्परिक धोती-कुर्ता, पैजामा व कमीज पहनते है। सिर पर सफेद टोपी भी ये लोग पहनते है। युवा थारू शहरी प्रभाव के कारण पैंट-सर्ट भी पहनने लगे हैं।

   थारू अपने भोजन में मुख्यतः चावल, मक्का, गेहूँ, मसूर व अन्य स्थानीय खाद्य सामग्री का प्रयोग करते हैं। थारुओं को मांस खाने का भी शौक है। भोज्य सामग्री के अलावा इनकी दिनचर्या कच्ची शराब पिये बगैर पूरी नहीं होती है।
2. **धार्मिक भावना-** थारू जनजाति के लोग भगवान पर विश्वास करते हैं तथा एक सर्वमान्य शक्ति को पूजते है। थारूओं के अलग-अलग गांवों में देवता भी अलग-अलग होते हैं। देवताओं की पूजा अधिकतर पुरुष करते हैं। थारू जादू द्वारा आत्माओं को प्रसन्न करने पर भी विश्वास रखते हैं। ये एक-दूसरे के जादू को काटने का प्रयास करते या करवाते हैं। यह कार्य करने वाला भर्रा कहलाता है। पूरे ग्राम में एक ही 'भर्रा' होता है जो देवी-देवताओं की पूजा में बलि भी चढ़ाता है। इनके यहाँ फसल, कृषि-यंत्रों एवं जानवरों की भी पूजा होती है।

थारूओं के प्रमुख पर्वों में 'चरई' सबसे महत्वपूर्ण है जो वर्ष में दो बार चैत्र तथा वैशाख में मनाया जाता है, जिसमें 'भूईयाँ' देवी की पूजा होती है। ये होली को अत्यन्त उत्वाहपूर्वक मानते है। इसके अलावा ये दीपावली, दशहरा तथा नागपंचमी भी हिन्दुओं की तरह मनाते है।

3. **सामाजिक स्थिति-** थारू जनजाति पितृ सत्तात्मक, पितृ वंशीय है। अधिकांश विस्तारित परिवार की प्रथा पायी जाती है। परिवार से बड़ा 'कुर्म' होता है जो वहिर्विवाही होता है। इसमें बड़ा 'कुरि' या 'कूरा' होता है जो कई कुर्म से मिलकर बनता है। यह अन्तर्विवाही होता है। परिवार का मुखिया घर का वृद्ध पुरूष होता है। थारू में स्त्रियों की स्थिति सर्वोच्च होती है, इसलिये उनमें 'वधुमूल्य' का प्रचलन है। इनके यहाँ विवाह मध्यस्थ व्यक्ति जिसे मंझपतिया कहते है, तय करता है। इनमें विवाह मुख्य रूप से फागुन, वैशाख, माघ, पूस के महिनों में होता है। विवाह से 3-4 वर्ष पूर्व मंगनी हो जाती है, परन्तु विवाह वयस्क होने पर ही होता है। थारू विवाह के सारे संस्कार स्वयं ही पूरा करते हैं तथा थारू एक विवाही होते हैं। देवर-विवाह, साली-विवाह के साथ-साथ बहुपत्नी विवाह भी कहीं-कहीं देखने को मिलता है। वधूमूल्य के अभाव में अपहरण विवाह तथा पलायन विवाह से वधु प्राप्ति की जाती है।

   थारू जनजाति में पति-पत्नी एक-दूसरे को तलाक दे सकते हैं। तलाक देने को ये लोग 'उरारी' कहते हैं। स्त्रियों का पुरुषों की अपेक्षा उच्च स्थान होने के कारण स्त्रियां अधिक आसानी से तलाक दे देती हैं, जबकि पुरुष को तलाक देने में हर्जाना पड़ता है। इसके अलावा थारूओं में नातेदारी व्यवस्था हिन्दुओं से प्रभावित है।

4. **व्यवसाय व आर्थिक स्थिति-** थारूओं का प्रमुख व्यवसाय व आय का श्रोत कृषि है। इसके अतिरिक्त मछली शिकार व अन्य कार्य है, जिसे व्यवसाय तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु पारिवारिक व्यय को कम करने में सहायक है। वन प्रदेश से लगे थारूओं में शिकार का शौक भी है। जितनी उर्वर भूमि इनके पास खेती के लिए है, उतना उत्पादन नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप थारूओं की कृषि से प्राप्त आय उनको जीवित रखने भर के लिये प्राप्त है। मछली मारने का कार्य पारिवारिक कार्य व आवश्यकता के रूप में किया जाता है। ये लोग पशुपालन के रूप में मुख्यतः सुअर, मुर्गियाँ, गाय व बकरी आदि पालते हैं। ये लोग जाल, डलिया, पाश आदि भी बनाते है।

2.2.2 बुक्सा जनजाति

बुक्सा जनजाति उत्तर भारत के उप-हिमालय की तलहटी से लेकर हिमालय के तराई तक पूरब से उत्तर-पश्चिम की तरफ एक पट्टी में बसे हुए हैं। पूरब में नैनीताल जनपद (वर्तमान में उधमसिंह नगर जनपद) के बाजपुर विकास खण्ड तथा देहरादून जिले के विकासपुर विकास खण्ड तक इनकी जनसंख्या बिखरी है। 'बुक्सा' नाम की उत्पत्ति के विषय में अलग-अलग धारणाऐं हैं। कुछ बुक्सा लोग स्वयं को इस तथ्य से सम्बन्धित करते हैं कि उनके पूर्वज बकरे से समान दाढ़ी रखते थे जिसे स्थानीय भाषा में 'बोक' या 'बोकी' कहा जाता है, जिसे बाद में बुक्सा कह दिया गया। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** बुक्सा लोग धोती, बंडी व हाफ कमीज तथा सिर पर पगड़ी धारण करते है। महिलाएँ परम्परागत वस्त्र लहंगा एवं चोली अधिक पसंद करती हैं। इसके अतिरिक्त नई पीढ़ी के लोग पैंट, शर्ट कोट व पायजामा आदि का प्रयोग करते है। विवाह जैसे अनुष्ठानों में दुल्हा व दुल्हन के परम्परागत वस्त्र होते हैं। आभूषणों में महिलाएँ हंसली, हमेल कानों में फूल तथा चाँदी की चूड़ियाँ पहनती हैं। मुख्य रूप से इनके अधिकतर आभूषण चाँदी के होते हैं। इनके गाँव व आवास व्यवस्था मूलतः मिलकर रहने के रूप में देखी जा सकती है। इनके अधिकांश गाँव नदी या जंगल के किनारे होते हैं। आरम्भिक काल में ये लोग झूम

कृषि करते थे। साक्ष्य रूप में कुछ गाँवों में एक ही परिवार पाया जाता है। किसी गाँव में इनके छोटे-छोटे पुरवे हैं, जिन्हें ये लोग 'मझरा' कहते हैं। प्रत्येक मझरा या गाँव का एक प्रमुख व्यक्ति होता है, जिसे प्रधान कहा जाता है जो मझरे का सर्वेसर्वा होता है।

2. **धार्मिक भावना-** बुक्सा हिन्दू धर्म जैसे ही धर्म को मानने वाले लोग हैं, जिनमें धार्मिक क्रियाओं को तो पहाड़ी ब्राह्मण सम्पन्न करते हैं, लेकिन जादुई क्रियाओं को भरार(एक तरह का तांत्रिक) अथवा सयाने सम्पन्न करते हैं। ये लोग जादू-टोने पर विश्वास करते हैं। भरार देवियों, प्रेतों, शैतानों एवं चुड़ैलों को अपने वश में करते हैं। भरार हित तथा अहित दोनों प्रकार के देवताओं को पहचानता है तथा इनका प्रयोग सामाजिक व व्यक्तिगत कल्याण के लिये करता है। इनमें पाँच प्रकार के देवता मिलते हैं। पहले प्रकार में पूर्वज जो प्रेत हो गये है, दूसरे ग्रामीण देवता, तीसरे पहाड़ी के देवता, चौथे जंगलों में रहने वाले देवता और पाँचवे ऐसे देवता जो मैदानी भागों में आये पड़ौसियों के हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग अब हिन्दू देवी-देवताओं की भी पूजा करने लगे हैं तथा लगभग हिन्दू धार्मिकता अपना रहे हैं।
3. **सामाजिक स्थिति-** बुक्सा समुदाय की भी सबसे छोटी इकाई परिवार ही है, जिसका प्रमुख घर का बड़ा होता है। कई परिवार मिल कर एक गाँव या मंझरा बनाते है। ग्रामीण संगठन का केन्द्र बिन्दु प्रधान होता है वह किसी को भी गाँव से निकाल सकता है। वह धार्मिक दृष्टि से भी गाँव का नेता होता है। गाँव के आपसी झगड़ों का निपटारा वह स्वयं करता है। सामुहिक भोजों, पंचायतों का वह सम्पूर्ण गाँव का प्रतिनिधित्व करता है। समाज सुचारू रूप से चले, इसलिये सामाजिक कानून भी बनाये जाते है। इनके विरूद्ध आचरण करने वालों को दण्ड दिया जाता है। विधान के लिए परम्परागत न्यायलय क्रियान्वित किया जाता है जिसके समस्त सदस्य प्रधान की तरह जन्मजात व परम्परागत होते है।

   बुक्सा परिवार पितृ सत्तात्मक होता है। इनमें एक-विवाह व बहु-विवाह दोनों ही प्रचलित है। कभी-कभी एक दूसरे प्रकार की भी व्यवस्था पायी जाती है, वह है- पितृवंशीय-मातृस्थानी परिवार। इसमें स्त्री पति के घर न जाकर पिता के घर में ही रहती है। वंश परम्परा इनमें पति के नाम से चलती है तथा सम्पत्ति हस्तान्तरण पत्नी के नाम से होता है। मरणोपरान्त सम्पत्ति का मालिक पुत्र न होकर पुत्री होती है।
4. **व्यवसाय और आर्थिक स्थिति-** कृषि बुक्साओं की आजीविका का प्रमुख साधन रहा है। लगभग 90 प्रतिशत बुक्सा खेती करते हैं। बुक्साओं को बढ़ईगिरी और लुहारगिरी की भी जानकारी है, किन्तु इसका उपयोग के रोजी-रोटी कमाने के लिए नहीं करते हैं। मछली पकड़ने का सामान थारुओं के घर-घर में पाया जाता है। वे अकेले ही नहीं सामुहिक तौर पर मछली पकड़ने का काम करते हैं।

   बुक्सा महिलाएं अपने पुरुषों की सभी आर्थिक गतिविधियों में मदद करती हैं। विशेषतया खेती में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। खेती में हल पुरुष ही चलाते हैं, लेकिन बोआई और निराई महिलाओं द्वारा की जाती है। फसल की कटाई और मड़ाई लगभग महिलाओं का दायित्व है। थारु महिलाएं हस्तशिल्प में भी दक्ष होती हैं। वे हाथ के पंखे व टोकरियां बनाती हैं। वे जंगली घास की चटाइयां बनाती हैं और मिट्टी के बर्तन भी बनाती हैं।

2.2.3 जौनसारी जनजाति

देहरादून जनपद के चकराता एवं कालसी विकासखण्डों के पर्वतीय भागों में रहने वाली जौनसारी जनजाति के लोग पांडवों को अपना पूर्वज मानते हैं। जौनसारी जनजाति स्तरीकृत है। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** जौनसारी जनजाति अपने विवाह के प्रकार के कारण विशेष चर्चित रही है। जौनसारियों में भ्रात-बहुपति विवाह प्रचलित है। सामाजिक विधान के अनुसार 'किसी भी अनुज को अपने लिये पृथक या अतिरिक्त पत्नी से विवाह की आज्ञा नहीं हैं।' अतः केवल भाईयों में अग्रज ही विवाह करता है। उसकी पत्नी या समस्त पत्नियां अग्रज की, अनुज की वैधनिक पत्नियां होती हैं। यदि अग्रज के विवाह के समय सबसे छोटा अनुज बच्चा है या उसका जन्म अग्रज के विवाह के पश्चात हुआ है तो सबसे छोटे अनुज की युवावस्था आने पर अग्रज को, छोटे अनुज की हम उम्र की लड़की से विवाह करना होगा। यह लड़की अग्रज की पहली पत्नी की बहन भी हो सकती है, यद्यपि सबसे छोटा अनुज सबसे बड़े अग्रज की पत्नी का भी पति होगा। इस प्रकार के विवाह को प्रो0 डी0 एन0 मजूमदार ने 'बहुपत्नी, बहुपति विवाह' कहा है।

   बहुपत्नी विवाह और बहुपति विवाह के कारण परिवार का सन्तुलन स्थायी एवं दृढ़ रहता है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा कृषि योग्य भूमि की कमी, परिवार की सीमित आय, कठोर जीवन यापन में एकांकी परिवार का पालन पोषण कठिन हो जाता है। इस तरह बहुपत्नी विवाह के कारण सभी भाई मिलकर सुविधा पूर्वक निर्वाह करते हैं।

   जौनसारी समाज में विवाह विच्छेद की स्थिति कम पायी जाती है। ये लोग तलाक को 'छूट' कहते हैं। तलाक निम्न कारणों से हो सकता है- ससुराल में पर-पुरूष से समागम करना, बांझपन होना एवं गृहस्थ व कृषि कार्य में परिश्रम न करना। ऐसी अवस्था में पुरूष अपनी स्त्री को मायके भेज देता है और वापस नहीं बुलाता है।

2. **धार्मिक भावना-** ये लोग स्वयं को हिन्दू व पाण्डव का वंशज मानते हैं। इस समुदाय के लोग पांडव तथा कुन्ती की पूजा-अर्चना करते हैं। धर्मिक कृत्यों में परिवार की स्त्रियाँ व पुरूष दोनों ही मिलकर भाग लेते हैं। मेले व उत्सव में साथ मिलकर नाचते-गाते हैं, परन्तु मन्दिर के अन्दर कोल्टा, दस्तकारों की स्त्रियाँ प्रवेश नहीं कर सकती हैं। जौनसारी 'महाषु' को अपना देवता मानते हैं व पाण्डवों में भीम की पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त बोध, चालदा, बीजर, आवासी, सिलगुरू, काली माँ, दुर्गा माँ की पूजा करते हैं। कोल्टा लोग नरसिंह भगवान के नाम पर बकरे की बलि चढ़ाते हैं। जादू-टोने में विश्वास करते हैं। जादू-टोना करने वाले को 'बाकी' कहते हैं। मुख्य पर्व 'बिस्सु' जो वैशाख माह में, जागरा- श्रावण माह में तथा दीपावली मनाते हैं। ये लोग दीपावली सामान्य दीपावली से एक माह बाद मनाते हैं । इसे 'हलियत' कहा जाता है। इसमें 5-6 स्त्री-पुरूष साथ-साथ नृत्य करते हैं।

3. **सामाजिक स्थिति-** जौनसारी प्रमुख रूप से तीन सामाजिक स्तरों में विभक्त हैं जो जन्म पर आधरित होने के कारण स्थिर हैं। जैसे- उच्च स्तर, मध्य स्तर और निम्न स्तर।

   - उच्च स्तर- सर्वप्रथम ब्राह्मणों एवं राजपूतों का स्तर है जो कि परम्परागत भूमि का स्वामी के साथ-साथ कृषक भी है। सामाजिक स्तर में ब्राह्मणों एवं राजपूतों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सवर्ण वर्ग के प्रतिनिधित्व के कारण ये लोग आपस में विवाह सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। इनकी जनसंख्या अन्य दो स्तरों की अपेक्षाकृत अधिक है।
   - मध्य स्तर- सामाजिक स्तर के मध्य में दस्तकारों का प्रतिनिधित्व है। इसमें सुनार; स्वर्णकार, लोहार, काष्ठकार, नाथ एवं बाजगी का स्थान आता है। ये सभी आपस में ऊँच-नीच का भेदभाव रखते हैं। अधिकांशतया लोग भूमिहीन है। ये सवर्णों का दासत्व स्वीकार किये हुये हैं। चूंकि ये विवाह एवं उत्सव में बाजा बजाने का कार्य करते हैं। इस कारण इन्हें 'बाजगी' कहा गया है।

- निम्न स्तर- सामाजिक स्तरीकरण में सबसे निम्न स्तर का प्रतिनिधित्व डोम, मोची या चमार करते हैं। इन्हें 'कोल्टा' कहा गया है। सबसे निम्न डोम हैं। कोल्टा अछूत, परम्परागत, भूमिहीन श्रमिक, सवर्ण वर्ग अर्थात् प्रथम सामाजिक श्रेणी की दासता स्वीकार वर्ग में आते हैं। कोल्टा जौनसारी के प्रत्येक ग्रामों में निवास करते हैं।

4. **व्यवसाय एवमं आर्थिक स्थिति-** जौनसारी अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधरित है। स्त्री-पुरूष दोनों ही लोग कृषि कार्य में बराबर का श्रम करते हैं। इनकी कृषि पशु शक्ति पर आधरित होती है। कृषि फसल में गेहूँ, धान, मक्का, अदरक, चौलाई एवं हल्दी का उत्पादन करते हैं।

2.2.4 भोटिया जनजाति

कुमाऊँ में अत्यधिक ऊँचाई में रहने वाले इस समुदाय के लोगों को भोटिया या शौका नाम से जाना जाता है। भोटिया जितने व्यवसाय कुशल रहे हैं, उतने ही परिश्रमी तथा स्वस्थ भी। कुमाऊँ का यह हिमालयी क्षेत्र भोटियों की भूमि है और इसी कारण इसे भोटांचल भी कहा जाता है। इस इलाके को 'भोटिया महाल' भी कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने इस प्रदेश को भोटान्त प्रदेश तथा स्वामी प्रणवानन्द ने इसे 'भोटा-प्रान्त' कहा है। कुमाऊँ के अलावा भोटिया लोग गढ़वाल तथा पश्चिमी नेपाल में भी बसते हैं। तिब्बत व नेपाल से लगे तीन हजार से बाहर हजार फीट की ऊँचाई पर भोटिया जनजाति निवास करती है। कुमाऊँ के जनपद पिथौरागढ़ की धारचूला तहसील के दारमा, व्यांस, चौदास घाटियों में ये लोग सदियों से निवास करते आ रहे हैं। चौंदास, व्यांस तथा काली नदी घाटी में अवस्थित अनेक भोटिया ग्रामों की पट्टियाँ हैं, जबकि धारचूला के उत्तर में धौली नदी घाटी को दारमा घाटी भी कहा जाता है। इस घाटी में निवास करने वाले भोटिया समूह को 'दारमी' कहा जाता है। चौदास, व्यांस व दारमा घाटी के भोटिया लोग अपने आपको 'रं' बताते हैं। यूरोपीय लेखक क्रूक (सन् 1897), एटकिन्सन (सन् 1882) तथा वॉल्टन (सन्1928) ने सर्वप्रथम 'शौका' नाम के लिये 'भोटिया' शब्द का प्रयोग किया। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** भोटिया जनजाति अपने विशेष रीति-रिवाज के लिये विशेष रुप से जाने जाते हैं, लेकिन वर्तमान में तेजी से विकास गति के कारण इनमें भी परिवर्तन आया है। पुरुष व स्त्रियाँ अपने रंग-बिरंगे परिधानों को त्याग कर कमीज, पैंट और कोट पहनने लगे हैं। स्त्रियाँ साड़ी, ब्लाऊज आदि पहनने लगी हैं। भोटियों के परम्परागत परिधान अत्यन्त गरम व ऊनी कपड़े होने के कारण नीचे आने वाले भोटिया समुदाय के लोग इन्हें त्याग रहे हैं।

   भोटियों में हरण-विवाह की परम्परा भी अब कम देखने को मिलती है। भोटियों के केवल वे माता-पिता जो आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं है, अपनी पुत्रियों के होने वाले पति द्वारा अपहृत किये जाने के लिये अपनी सहमति दे देते हैं और खुद भी इस योजना में शामिल होते हैं। लेकिन इनके अब शहरों की ओर आ जाने तथा ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों पर अधिक होने, निरन्तर विकास की प्रक्रिया हर गाँव, हर क्षेत्र में होने के कारण ये अपनी पुरानी अनूठी परम्पराओं को छोड़ते जा रहे हैं। अब इनमें विवाह माता-पिता के समझौते के आधार पर होते हैं। विवाह से पूर्व कन्याओं से भी उनकी इच्छायें जानी जाती हैं, परन्तु यह मात्र औपचारिक होता है। पहले वैदिक विधि से विवाह कराने के लिये ब्राह्मणों का योगदान लेते हैं।

   मृत्यु के समय के कृत्यों में भी परिवर्तन आ चुका है और परम्परागत क्रिया को आज भोटियों ने पूर्णतः त्याग दिया है। ''पुराने दौर में किसी भोटिया की घर से बाहर मृत्यु हो जाने पर उसके रिस्ते-नातेदार दिवंगत की आत्मा को उसके मृत्यु स्थान से लेकर घर तक ले जाने के लिये रास्ते भर ऊन का तागा गिराते

थे। यह प्रथा अब खत्म हो गयी है। इसी प्रकार 'डूडिंग' या 'गोऊन' जो कि एक खर्चीली प्रथा थी अब व्यवहार में नहीं है। इस विकसित दौर में अब ये प्रथा लगभग-लगभग समाप्त हो चुकी है।

2. **धार्मिक भावना-** समय के साथ-साथ भोटिया समुदाय में भी परिवर्तन आया है। अब ये लोग हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करने लगे हैं। लेकिन आज भी उन्होंने अपने परम्परागत देवी-देवताओं गविया, नामजु, न्यूरांग, नरसिंह, सचिरी, कतिपय अन्य देवाताओं की पूजा पारम्परिक तौर से यथावत बनाये रखी है। हालांकि ये हिन्दू त्योहारों को भी मानते हैं। भोटिया समुदाय का एक वर्ग अपने आपको हिन्दू भोटिया कहता है। यह वर्ग हिन्दू आस्था को अपना रहा है तथा कुछ विद्वानों का मत है कि यह अपने परम्परागत धर्म को त्याग रहा है।
3. **सामाजिक स्थिति-** भोटिया समुदाय में समाज में सदस्यों के लिये कुछ निश्चित नियम होते हैं। न्याय, उन नियमों को तोड़ने वालों को दण्ड देता है, इस समुदाय में कानून मुख्यतः अधिकारों एवं कर्तव्यों का योग है। जो परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा प्रचार के आधार पर क्रियाशील है। ये आर्थिक तथा सामाजिक बातों पर एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। समस्याओं के समान होने के कारण जनमत के विभिन्न रूप विकसित नहीं हो पाये हैं। इस समाज में सम्पत्ति का हस्तान्तरण एवं पारिवारिक झगड़े का निपटारा करने के लिये ग्राम पंचायत होती है, जिसका मुखिया ग्राम प्रधान होता है। जो छोटे-छोटे झगड़े स्वयं ही निपटा देता है। अगर वह कोई मामला नहीं निपटा पाता तो पंचायत बुलायी जाती है। कुछ लोग अपनी बात को लेकर न्याय के लिए अदालत में भी जाते हैं।

   विकास के इस दौड़ में भोटिया महिलाओं में भी भारी परिवर्तन आया है। एक बड़े समूह में आज भोटिया कन्यायें व युवतियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं तथा राजकीय व राष्ट्रीय स्तर की सेवाओं में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। लेकिन आज भी भोटिया महिलाऐं जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं या ग्रामीण परिवेश से बाहर नहीं निकल पायी हैं, शिक्षा से वंचित है, सामाजिक दृष्टिकोण से उनमें परिवर्तन तो आया है, परन्तु शैक्षिक स्तर पर जो क्रान्ति होनी चाहिए थी वह नहीं हो पायी है। भोटिया समुदाय के पुरुषों के शिक्षित होने के कारण कुछ भोटिया महिलायें अपने जीवन साथी को स्वयं चुनने की आजादी को भी खोते जा रही हैं।
4. **व्यवसाय और आर्थिक स्थिति-** तिब्बत तथा भारत पर चीनी आक्रमण, भोटियों में उनके आर्थिक विनाश के अतिरिक्त उनके सामाजिक, राजनैतिक व संस्कृतिक हलचल के लिये परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से उत्तरदायी है। तिब्बत से किसी प्रकार का व्यापार व लेने-देने न रह जाने के कारण भोटिया समुदाय को अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये नेय श्रोतों की खोज करनी पड़ी। सीमान्त जिलों में सड़कों तथा अन्य संचार साधनों के विकास ने न केवल नीचे आकर बसने की सुविधा दी, बल्कि इनसे परम्परागत बाजारों में वृद्धि और विकास भी हुआ। साथ ही नये-नये प्रकार की हस्तकला के धन्धों की उपलब्धि हुयी तथा अधिकाधिक घनिष्ट सम्पर्क व मेल-जोल के अवसर भी प्राप्त हुए।

   भोटिया जो अपने कठोर परिश्रम के लिये प्रसिद्ध हैं। अपने विचारों और तौर-तरीकों में गतिशील रहे हैं। वे आज भी आर्थिक स्थिति को बदलने और मजबूत करने के लिये नये व्यापार के श्रोत खोज रहे हैं।

   भोटिया लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अत्याधिक कठिन परिश्रम एंव संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं। जब तिब्बत से व्यापार था तब ये भोजन व आवश्यक वस्तुएँ वही से प्राप्त कर लेते थे। भारत के तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त होने पर इन्होंने जंगलों को साफ कर खेती का कार्य किया तथा पशुपालन भी शुरू किया। खेती के अलावा घर व गाँव में हथ करघा, चर्खी, शॉल, पंखी, कालीन, कम्बल, कोट का कपड़ा, मफलर इत्यादि भी बनाते हैं और इनको मैदानी क्षेत्रों में बेचकर अपनी

आर्थिक स्थिति मजबूत करते हैं। ये लोग इन वस्तुओं को बनाने में भेड़-बकरी के ऊन का प्रयोग करते हैं। लेकिन आज इनकी स्थिति में सामाजिक व राजनैतिक स्थिति में बड़े पैमाने पर परिवर्तन आ चुका है।

2.2.5 राजी (वन रावत)

उत्तराखण्ड के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ व चंम्पावत के उपहिमालय क्षेत्र की एक अल्पज्ञात 'बनरौत' जिन्हें प्रायः 'राजी' या 'वन रावत' नाम से जाना है आज भी विकास की इस दौड़ में बहुत पीछे है।

इन अनुसूचित जनजातियों में भी नितान्त आदिम स्थिति में रहने वाली राजि जनजाति को सन् 1975 में आदिम जनजाति घोषित किया गया। भारत में ऐसे आदिम समूहों की संख्या 74 है। 'राजि' का अर्थ जंगलों में रहने वालों के सन्दर्भ में किया जाता है। आज भी यह शुद्ध आखेटजीवी, कन्दमूल बटोरने वाली अल्पसंख्यक आदिवासी जनजाति है, जो कि पूर्वी उत्तराखण्ड तथा पश्चिमी नेपाल में निवास करती है। विद्वानों ने इनको अनुवांशिकी की दृष्टि से मंगोलाइट मुख-मुद्रा और शारीरिक गठन के आधार पर तिब्बती-वर्मा परिवार की आदिम शाखा किरातों से जोड़ा है। अनुमान है कि यह जनजाति हजारों वर्ष पूर्व पूर्वोत्तर में स्थित वर्मा की पहाड़ियों से होकर आखेट की तलाश में भटकते हुए यहाँ पहुँची। राजि मूलतः प्रकृति पूजक हैं। इनका निवास स्थान सदैव से प्रकृति निर्मित गुफायें (उड़यार) रहे हैं, किन्तु आज सरकार द्वारा इनके भवन निर्माण एवं कृषि भूमि हेतु प्रयास किये जाने से ये निश्चित जगहों पर मकानों में रहने लगे हैं। वर्तमान में समस्त राजि ग्रामों की संख्या 10 है, जिनमें पिथौरागढ़ जनपद में 09 ग्राम एवं चम्पावत जनपद में 01 ग्राम है। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** राजि जनजाति में विवाह तथा जीवन साथी चुनने के तरीके अपने आप में भिन्न हैं। वे सामुदायिक अन्तः विवाह, धड़ा व ग्राम बहिर्विवाह का नियम पालन कठोरता के साथ करते हैं। मुख्य रूप में यह पितृस्थानीय समुदाय है, लेकिन फिर भी लड़के को लड़की के घर में ही रहने का रिवाज भी इनमें है तथा लड़की का पति ही उसके पिता (लड़की के) की सम्पत्ति का मालिक बन जाता है। इनमें विवाह में कोई धार्मिक संस्कार नहीं होते हैं। यह दो परिवारों के बीच एक समझौता होता है। लेकिन अब राजि लोग भी पंडितों को बुलाकर विवाह को धार्मिक संस्कार के साथ करने लगे हैं। ये लोग जनेऊ संस्कार भी करते हैं। राजि जनजाति में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर पहले यह प्रथा थी कि मृत्यु के उपरान्त परिवार के सदस्य उस झोपड़ी या घर की छत को खोल कर वहाँ से चले जाते थे। वर्तमान में एसा नहीं है। वर्तमान में ''दाह संस्कार'' सम्पन्न किया जाता है। यदि मृतक अविवाहित हो तो उसे जमीन में गाड़ देते है। मृतक के श्राद्ध आदि कर्म करने की प्रथा इसमें नहीं है।
2. **धार्मिक भावना-** बनरौतों या राजियों में गोत्र या गोत्र चिन्ह जैसी अवधारण का अस्तित्व नहीं है। तथापि धार्मिक आधार पर वे हिन्दू तथा जाति में अपने आपको 'रजवार (चन्द्र)' अर्थात् राजपूत मानते हैं। जब कोई व्यक्ति बीमार होता है तो देवता या जंगल के प्रेत आत्माओं व भूत आदि की पूजा करते हैं, लेकिन कभी भी उनके सम्मान में मन्दिर नहीं बनाते। इनके अपने विशिष्ट देवी-देवता होते हैं, लेकिन इसके साथ-साथ वे हिन्दूओं और कुमाऊँ वासियों तथा वास्तव में हिमालयी अंचल के निवासियों की भाँति स्थानीय देवी-देवताओं, प्रेतात्माओं तथा अदृश्य एवं प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते हैं। राजियों में आज भी मलैनाथ, गणैनाथ, सैम(समजी), मलिकार्जुन(मलकाजन), हुरमल आदि देवताओं की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त ये हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की पूजा करते हैं।
3. **सामाजिक स्थिति-** राजि समाज में पुरुष प्रधानता दिखती है। पारिवारिक निर्णयों व आर्थिक मामलों में पुरुषों और घर के प्रमुख के निर्णय ही स्वीकार्य होते हैं। ऐसा नहीं है कि पारिवारिक मामलों में महिलाओं की राय नहीं ली जाती है। समाज की मुख्य धारा से जुड़ने के कारण इस जनजाति की सामाजिक स्थिति में

भी बदलाव आया है। महिलाओं की पारिवारिक मामलों में भागीदारी बढ़ी है। पारिवारिक निर्णयों के साथ-साथ अब महिलाएं घर के आर्थिक मामलों में भी अहम भूमिका निभा रही हैं। महिलाएं मुख्यतः मजदूरी करके ही घर के खर्चे को चलाती हैं, लेकिन राजि महिलाएं स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ जुड़ कर स्वयं सहायता समुहों के माध्यम से बचत कर रही हैं और परिवार की आर्थिक गतिविधियों में अहम भूमिका निभा रही हैं। राजि पुरुषों द्वारा मदिरा का अधिक मात्रा में सेवन व गिरते स्वास्थ्य के कारण परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी का बोझ महिलाओं पर आ गया है। ऐसा नहीं है कि महिलाएं रोगग्रस्त नहीं हैं, परन्तु वे कठिन शारीरिक श्रम करने के लिए मजबुर हैं। सांस्कृतिक व धार्मिक गतिविधियों में पुरुष व महिलाएं बराबर की भागीदारी करती हैं। प्राथमिक स्तर की शिक्षा लगभग सभी राजि ग्रहण कर रहे हैं। मुख्य धारा में जुड़ने के कारण इस जनजाति का बाहरी समाज के साथ एक संतुलित तालमेल बना है।

4. **व्यवसाय व आर्थिक स्थिति-** राजी आर्थिक रूप से आखेट एवं वन संग्राहक जनजाति है जो पहले ''अदृश्य व्यापार'' अर्थात् पारस्परिक विश्वास एवं भरोसे पर निकट के व्यापार करते थे। कृषि पर निर्भरता न होने के कारण ये पशु-पक्षी का शिकार करके भी भोजन समस्या का निराकरण करते थे। जलवायु सम्बन्धित दशाओं का नितान्त अभाव होने के कारण कृषि व्यवसाय का तरीका अब भी आदिम अवस्था के समरूप है। इसलिये भूमि होते हुये भी ये कृषि का कार्य सफलतम रूप में नहीं कर पाते और जमीन बंजर ही पड़ी रहती है। अब धीरे-धीरे ये लोग गाय, भैंस आदि जानवर भी पालने लगे हैं। ये गाय का पालन बैल (बडड़ा) प्राप्त करने के लिये अधिक करते हैं, क्योकि ये बैलों से खेत जोतते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बचे कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति भी करते है।

   राजियों की अर्थव्यवस्था में प्रमुख दैनिक मजदुरी और लकड़ियों का कारोबार, जिसमें इमारती लकड़ी से लेकर दैनिक उपयोग में आने वाली लकड़ी है। कृषि कार्य के उपकरण भी ये लोग बड़ी कलात्मकता के साथ बनाते है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के तहत् अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है?
2. जौनसारी जनजाति उधम सिंह नगर जिले के खटीमा व सितारगंज क्षेत्रों में निवास करती है। सही/गलत
3. कौन सी जनजाति अपने को पांडव का वंशज मानती है?
   क. थारु ख. बुक्सा ग. जौनसारी घ. भोटिया
4. किस नदी घाटी क्षेत्र को दारमा घाटी कहा जाता है?
5. उत्तराखण्ड की किस जनजाति के प्राकृतिक आवास गुफाएं (उडियार) हैं?
   क. थारु ख. भोटिया ग. राजि घ. जौनसारी

2.3 जनजातीय विकास हेतु योजनाएं

भारत एक ग्राम प्रधान देश है। इसकी समृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि पर निर्भर है। सम्भवतः ग्रामीण क्षेत्रों का विकास तभी हो सकता है जब राष्ट्रीय स्तर पर गाँवों में समाज सुधार तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जाय।

जनजातीय क्षेत्रों में समाज सुधार तथा कल्याण के कार्यक्रमों की सफलता राजकीय सहायता और प्रशासनिक योजनाओं पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि इन क्षेत्रों में ऐसे लोग कल्याणकारी कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए आम व्यक्ति को उस ओर प्रेरित करना जरूरी होता है, इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें ऐसे कार्यक्रमों के लाभ

ओर दूरगामी परिणामों से अवगत कराया जाय। लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन के लिए सरकारी मशीनरी पूरी तौर से सक्षम नहीं हो सकती। इसके लिए क्षेत्र के सक्षम व्यक्तियों में सेवाभावों को उत्पन्न कराना आवश्यक होता है। जनजाति समाज के लोक कल्याणकारी और समाज सुधार कार्यों की सफलता में अभिजन वर्ग की भूमिका निर्णायक होती है। जनजातीय क्षेत्र में चलाये जाने वाले समाज सुधार के कार्यक्रम, प्रायः वहाँ की परम्पराओं और रूढ़ियों के विपरीत होते है। अतः ऐसे किसी भी कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक हो जाता है कि जनजातीय अभिजन वर्ग को विश्वास में लिया जाय। जनजातीय विकास हेतु योजनाओं के सम्बन्ध में जानने के लिए केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का अध्ययन करते हैं-

2.3.1 जनजातीय विकास में पंचवर्षीय योजनाएं

जनजातियों की स्थिति को उभारने के लिये सरकार का ध्यान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही इनके विकास की ओर केन्द्रित हो गया था। देश की समस्त जनजातियों के राष्ट्र की मुख्यधारा से न जुड़ पाने के कारण पंचवर्षीय योजनाओं में इनके कल्याण हेतु कार्यक्रम बनाये गये। पहली पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पिछड़े वर्गों का एक क्षेत्र शामिल किया गया था। उस समय यह सोचा गया था कि सामान्य विकास कार्यक्रमों को इस प्रकार से बनाया जाय ताकि वे पिछड़े वर्गों की जरूरतों का ध्यान रख सकें और पिछड़े वर्गों के लिये विशेष प्रावधान संवर्धनकारी हो और इनका उपयोग जहाँ तक सम्भव हो, इन वर्गों के विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिये किया जा सके। इस सन्दर्भ में अनुसूचित जातियों के लिये पांचवी योजना के दौरान आदिवासी उपयोजना और छठी योजना में विशेष घटक योजना शुरू की गयी, ताकि अनुसूचित जनजातियों के लाभ के लिये विकास कार्यक्रमों को सरल बनाया जा सके और उसकी निगरानी की जा सके।

2.3.2 अनुसूचित जनजातियों के लिये चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिये जनजातियों के मेट्रिकोत्तर(हाई स्कूल से आगे) शिक्षा के मौजूदा कार्यक्रम को भी जारी रखा गया। आवासीय स्कूलों, जिनमें आश्रम पद्वति स्कूल भी शामिल हैं, का विस्तार किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत जनजातीय क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूल खोलने को भी प्राथमिकता दी गयी। अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण को भी ध्यान में रखा गया और उसके अनुसार ही प्रारम्भिक अवस्था पाठ्यक्रमों का विकास किया गया तथा जनजातीय भाषाओं में प्रशिक्षण तैयार किया गया। प्राथमिकता के आधार पर जनजाति क्षेत्रों में आँगनवाड़ियों, औपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गयी। इसके अतिरिक्त, शिक्षा के सभी चरणों पर पाठ्यक्रमों को इस तरह बनाया गया ताकि जनजाति लोगों की समृद्ध साँस्कृतिक पहचान और उनकी विशाल सृजनात्मक प्रतिभा के प्रति उनमें जागरूकता पैदा हो सके।

अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में लघु वन उत्पाद पर एक नई नीति बनायी गयी। इस उद्देश्य के लिये क्षेत्र में सहकारी ढ़ाँचे को उपयुक्त रूप से पुनः निर्मित तथा पुनः संचारित किया गया तथा जनजातियों हेतु विभिन्न व्यवसायिक समूहों के लिये सहकारी समितियाँ बनायी गई। उनमें प्रशिक्षण तथा उद्यमशीलता के विकास के माध्यम से अनिवार्य उत्पादक तथा प्रबंधकीय कौशल का विकास किया गया, जिससे इनमें स्व-रोजगार की प्रवृत्ति बढ़ी है। उपभोग तथा उत्पादन के प्रयोजन हेतु ऋण प्राप्ति के लिये सीमित पहुँच का परिणाम यह हुआ कि जनजातियों को साहूकारों/व्यापारियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप साहुकारों तथा व्यापारियों के ऋणों को चुकाने के लिये विकास के लाभों का सीमित हो जाना व भूमि तथा अन्य सम्पत्तियों के रूप में संसाधन आधार का नुकसान होना है। आठवीं योजना में एक आवश्यक लक्ष्य यह रख गया था कि बैंकों तथा सहकारी

संस्थानों द्वारा अधिक ऋण उपलब्ध कराने का मार्ग प्रशस्त करना। आदिम आदिवासी समूहों के लिये जहाँ सम्भव है, परिवार को एकक के रूप में लेते हुए उनके आर्थिक विकास के लिये विस्तृत योजनाएं बनायी गयी। आन्तरिक संरचना तथा विकासीय आवश्यकताओं की विशेष रूप से पहचान की गयी तथा एकीकृत योजना का विकास किया गया। इसके अतिरिक्त वे वन-गाँव, जिनकी संख्या लगभग 5000 है और जिनमें 2 लाख से भी अधिक आदिवासी/जनजाति लोग रहते हैं, और बड़ी संख्या में सामान्य लाभ से वंचित रहते हैं, कृषि मंत्रालय ने मार्च, 1984 से भी अधिक वर्षों से है। दीर्घ अवधि, जैसे 15 से 20 वर्षों तक वंशागत किन्तु हस्तान्तरण योग्य अधिकार देने का सुझाव दिया था।

2.3.3 उत्तराखण्ड में चल रही कल्याणकारी व विकासोन्मुख योजनाएं

केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा जनजातीय विकास के लिये अनेकों योजनाएं चल रही है। सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं में जनजातियों के चहुमुखी विकास का लक्ष्य रखा गया है। इनके आर्थिक विकास के लिये अनेकों ऐसी व्यवसायिक योजनाएं चालाई गयी, जिससे इनका आर्थिक उत्थान हो सके। आर्थिक उत्थान के दृष्टिकोण से सरकार ने इनके पारम्परिक व्यवसाय में ही आधुनिकीकरण करके इनको आर्थिक रूप से समृद्ध करने का प्रयास किया है। कुमाऊँ की भौगोलिक स्थिति के आधार पर यहाँ की जनजातियों को उनके अनुरूप ही योजना बना कर उनके विकास का लक्ष्य रखा। कुमाऊँ की प्राकृतिक सम्पदा से निर्मित वस्तुओं के उचित खरीद के लिये सरकार ने बाजारों में जनजाति के द्वारा बनाये माल के लिए बाजार निर्मित किये गये हैं। इन बाजारों में इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचा जाता है और उत्पन्न आय से पुनः इन जनजातियों हेतु कच्चा माल खरीदा जाता है। इस क्रम के चलते इनमें आर्थिक विकास तो निश्चित तौर पर होता ही है, साथ ही वर्तमान स्थितियों की समझ भी उत्पन्न होती है। कुमाऊँ के उत्तर में रह रही भोटिया जनजाति में इनके परम्परागत व्यवसाय को देखते हुए इनके लिये ऊन वृहत योजना, रामबाँस योजना, पश्मिना उत्पादन परियोजना, तिब्बतीयन ऊन वृहत उद्योग योजना का संचालन किया है, जिसके तहत इनको ऊन और अन्य कच्चा माल दिया जाता है तथा इस कच्चे माल से ये जनजाति अपने परम्परागत शैली में दक्ष बनाते हैं और फिर इन्हें बाजार में बेचने हेतु लाया जाता है।

कुमाऊँ के तराई में रह रही थारू तथा बोक्सा जनजाति के लिये उनके भिन्न भौगालिक परिवेश को देखते हुए सरकार द्वारा योजनाएं बनायी गयी हैं, जैसे- डवाकरा, डनलप कार्ड, लघु उद्योग हेतु ऋण, डेरी खोलना एवं क्षेत्रीय स्तर पर प्राप्त कच्चे माल से वस्तुऐं निर्मित करना इत्यादि। कई जनजाति परिवार इन सरकारी योजनाओं से लाभान्वित भी हुए हैं। कुमाऊँ की सर्वाधिक पिछड़ी जनजाति राजी आज भी विकास की धारा से बिल्कुल परे है तथा इन्हें योजनाओं की अधिक जानकारी भी नहीं है।

2.4 जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

चाहे सरकारें जो भी रही हों, ज्ञात जनजातीय समाज के लिए प्रशासनिक तंत्र की व्यवस्था हर सरकार ने की है। आईये भारत की आजादी से पूर्व अंग्रजी शासन ने और आजादी के बाद भारतीय शासन ने जनजातीय विकास हेतु किस प्रकार के प्रशासनिक तंत्र का विकास किया, इसके सम्बन्ध में विस्तार से जानते हैं-

2.4.1 औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक तंत्र

अंग्रेज शासकों ने अपने हितों की पूर्ति के लिए जनजातियों को लेकर काल्पनिक बातों और अंधविश्वासों को फैलाना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों ने पूर्ण प्रयास किया कि आदिवासी समुदाय शेष भारतीय जनसमूह के सम्पर्क में न रहे। इसका कारण जनजातियों की शक्ति व क्षमता थी, जो कि किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अत्यन्त

लाभकारी सिद्ध हो सकती थी। इस कारण प्रारम्भ में ब्रिटिश प्रशासक और ईसाई मिशनरियां ही जनजातीय क्षेत्रों का भ्रमण कर सकते थे।

भारत में साम्राज्य के सुदृढीकरण के अपने प्रयासों में अंग्रेजों का मुकाबला राजमहल की पहाड़ियों (बंगाल) में रहने वाले 'पहाड़िया' जनजाति से भी हुआ। यह जनजाति आक्रामक प्रवृत्ति की थी और हिन्दू जमींदारों के विरूद्ध आक्रामक नीति का अनुसरण किया, किन्तु शीघ्र ही आक्रमक नीति का परित्याग करके कूटनीति का सहारा लिया गया, जिसमें जनजाति के मुखियाओं को सभी प्रकार के उपद्रवों की सूचना देने का उत्तरदायित्व दिया गया।

शोषण की शिकार कुछ जनजातियों ने भी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ विद्रोह किए, इनमें सन् 1931 में सिंहभूमि का 'हो' विद्रोह, तथा सन् 1855 का प्रसिद्ध ''संथाल विद्रोह' प्रमुख हैं। जनजातियों के इन विद्रोहों के पिछे कारण था, उनका आर्थिक एंव सामाजिक शोषण। ऐसी स्थितियों में ब्रिटिश सरकार ने अलग-थलग पड़े जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान किया। अन्ततः अंग्रेजी सरकार ने जनजातियों के जीवन तथा रूचियों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इन्हें विशेष क्षेत्रों में विभाजित करने की नीति निर्धारित की। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1874 में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा जनजातीय क्षेत्रों को अनुसूचित जिलों के रूप में विभाजित किया गया। भारत सरकार के अधिनियम- 1919 की धारा- 52 'ए' के अन्तर्गत यह क्षेत्र पुनः संघटित किए गए। इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया जो दीवानी, फौजदारी मामलों में न्याय, सार्वजनिक राजस्व वसूली, कर निर्धारण तथा किराये से सम्बन्धित सभी विषयों की देख-रेख करें तथा अनुसूचित जिले का प्रशासन भी संभाले। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में उचित प्रतिबन्धों तथा परिवर्तनों के साथ अधिकारियों के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि करने का भी प्रावधान था। इस प्रकार सरल आदेशों द्वारा अधिशासियों को बड़े तथा विस्तृत अधिकार दिए गए। स्वतंत्रता आन्दोलन की गति के साथ-साथ अंग्रेज शासकों की चिन्ताएं भी बढ़ने लगी। वे जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक रखना चाहते थे। भारतीय वैधानिक कमीशन (साइमन कमीशन) ने सलाह दी थी कि वित्तीय तथा संवैधानिक आधारों पर जनजातीय क्षेत्रों का उत्तरदायित्व केन्द्र पर होना चाहिए। सन् 1935 में जनजातियों पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से बनाए गए प्रावधान के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्रों को पूर्ण व आंशिक रूप से अलग क्षेत्रों में परिवर्तित किया गया।

उत्तराखण्ड के तराई-भाबर क्षेत्रों में वनों के भीतर रहने वाली थारू और बुक्सा जनजाति स्वभाव से ही सीधी-सादी और सरल स्वभाव की थी। उनमें न तो अन्य जनजातियों के समान आक्रामकता थी न ही वे अपने क्षेत्र में बाहरी हस्तक्षेप व शोषण के विरूद्ध संगठित होकर खड़े हुए। फलस्वरूप अंग्रेज प्रशासकों द्वारा उनकी घोर उपेक्षा प्रारम्भ हो गई। तराई-भाबर में उनकी भूमि पर बाहरी लोगों को बसाया गया और उनके द्वारा बड़े पैमाने पर यहां पर कृषि कार्य किया जाने लगा, जिस कारण जनजातियों की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती गई तथा उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई। अपनी आजीविका के लिए जनजातियों को बाहरी लोगों के यहाँ मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा। एक समय जिस घर में उनकी भूमिका स्वामी की थी, वहीं पर वे सेवक की भूमिका निभाने के लिए बाध्य कर दिए गए थे। तराई-भाबर की इन जनजातियों को यदि अपने मिटने का अहसास होता तो सम्भव है तराई-भाबर का इतिहास जिस रूप में आज हमारे सम्मुख है वह इस रूप में नहीं होता।

2.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का प्रशासनिक तंत्र

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनकल्याण की भावना ने पूरे देश में व्यापक रूप से स्थान बनाया और 26 जनवरी 1950 की संविधान सभा में पारित विभिन्न प्रावधानों द्वारा इसकी पुष्टि हुई। इन प्रावधानों से भारतीय जनजातीय जनसंख्या को राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाने के कार्यों को बल मिला। जनजातियों को शेष जनसंख्या के स्तर तक लाने के उद्देश्य से संविधान में इन जनजातियों को 10 वर्षों तक के लिए विशेष सुविधाएं तथा सुरक्षा प्रदान की गई।

इस अवधि में समय-समय पर अब तक वृद्धि की जाती रही है। जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के उद्देश्य से सन् 1951 में, जनजातीय कल्याण विभाग की स्थापना की गई। अनुच्छेद- 244 के अन्तर्गत आसाम के अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन पांचवी अनुसूची तथा आसाम के जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन संविधान की छठी अनुसूची के अनुसार किया जाना सुनिश्चित किया गया।

राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए राज्यपाल को अधिकार दिया गया कि-

अ- जनजातियों पर लागू होने वाले केन्द्र तथा राज्य के नियमों की विधि में परिवर्तन कर सके।

ब- उनकी शान्ति तथा अच्छे प्रशासन के लिए नियम बनाना, इनके अधिकारों की रक्षा करना, बेकार भूमि के आवंटन में सहायता करना तथा साहूकारों से बचने में उनकी सहायता करना।

इसके अतिरिक्त संविधान में जनजातियों के अधिकारों की सुरक्षा, उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित बनाए रखने के उद्देश्य से भी पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं।

अनुसूचित क्षेत्रों की रचना दो स्पष्ट उद्देश्यों के आधार पर की गई थी- पहला उद्देश्य जनजातियों को उनके अधिकारों के प्रयोग में सहायता करना तथा दूसरा उद्देश्य अनुसूचित क्षेत्रों के विकास व अनुसूचित जनजातियों की आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रगति में सुधार लाना था।

जनजातीय क्षेत्रों के लिए अनुपयुक्त विधानों की जांच उनकी शान्ति तथा अच्छे प्रशासन के लिए विनियमों की संरचना का कार्य दिया गया। राज्य की सीमाओं में रहने वाली सभी अनुसूचित जनजातियों के कल्याण तथा विकास के लिए विशेष योजनाओं को लागू करने का उत्तरदायित्व भी राज्य सरकार का है और राज्य सरकारों के लिए अतिरिक्त धनराशि प्रदान करने का उत्तरादायित्व केन्द्र सरकार का है। किसी भी योजना को लागू करने के सम्बन्ध में राज्य सरकार को निर्देश देने तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन से सम्बद्ध प्राथमिकताओं की सूची बनाने में राज्य सरकार का मार्गदर्शन करने का अधिकार केन्द्र सरकार को प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न-2

1. उत्तराखण्ड की सबसे पिछड़ी जनजाति कौन सी है?
2. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सन् 1855 का प्रसिद्ध जनजाति विद्रोह कौन सा है?
3. जनजातीय कल्याण विभाग की स्थापना की गयी?

   क. सन् 1951 ख. सन् 1955 ग. सन् 1960 घ. सन् 1965

2.5 सारांश

जनजातीय समाज अपनी अनुठी परम्परा और अपने प्राकृतिक आवासों अपनी अमुल्य संस्कृति, अपनी भाषा के लिए जानी जाती हैं। जनजातीय समाज की अपनी एक अलग पहचान है। किन्तु सभ्य समाज और विकास की धारा से जुड़ने के कारण आज जनजातियां आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयासरत हैं। उत्तराखण्ड राज्य में पांच प्रकार की जनजातियां हैं। इनमें से राजि(वनरावत) और बुक्सा जनजातियों की गिनती पिछड़ी जनजातियों के रुप में की जाती है। आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक रुप से पिछड़ी ये जनजातियां आज विकास की मुख्य धारा में शामिल नहीं है। संविधान के अन्तर्गत किये गये प्रावधानों, विभिन्न सरकारी विकास योजनाओं, जनकल्याणकारी योजनाओं के चलने के उपरान्त भी ये जनजातियां कठिन भौगोलिक क्षेत्रों में निवास के कारण विकास की दौड़ में पिछे हैं। उत्तराखण्ड की अन्य जनजातियां- जौनसारी, भोटिया और थारु समाज की मुख्य धारा से बहुत हद तक जुड़ पाये हैं।

2.6 शब्दावली

सर्वमान्य शक्ति- जो शक्ति सबको मान्य हो, झुम कृषि- इस प्रकार की कृषि में एक स्थान पर कृषि करने के उपरान्त उस स्थान पर आग लगाकर उसे छोड़ दिया जाता है और अन्य स्थान पर जाकर कृषि की जाती है।, पित्र सत्तात्मक- पुरुष प्रधान व्यवस्था, हस्तांतरण- सौंपना, अग्रज- बड़ा, बाजगी- बाजा बजाने वाला, संवर्धनकारी- बढावा देना, सृजनात्मक- रचनात्मक, सामाजिक विधान- सामाजिक नियम-कानून, पुनः निर्मित तथा पुनः संचारित- दुबारा निर्माण तथा दुबारा शुरु करना, वन गांव- वनों के नजदीक व वनों से घिरे गांव, वहिर्विवाही- बाहरी समाज के साथ होने वाले विवाह सम्बन्ध, अन्तर्विवाही- अपने ही लोगों के बीच में होने वाले विवाह सम्बन्ध, अदृष्य व्यापार- यह व्यापार उत्तराखण्ड की आदिम जनजाति राजि(वनरावत) और समीप अन्य जाति के गांव के लोगों के बीच एक एसा व्यापार था जो विश्वास और भरोसे पर टिका हुआ था। जिसमें राजि जनजाति अपने द्वारा बनाये गये समान को समीप अन्य जाति के घरों के आगे रख देते थे और उसके बदले में खाने-पीने के अन्य सामान को ले जाते थे। यह व्यापार रात को अंधेरे में ही होता था।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 **1.** अनुच्छेद- 342, **2.** गलत, **3.** ग. जौनसारी, **4.** धौला नदी घाटी क्षेत्र, **5.** ग. राजि

अभ्यास प्रश्न- 2 **1.** राजि जनजाति, **2.** संथाल विद्रोह, **3.** सन् 1951

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तराई के वन और वनवासी, डॉ0 अजय एस0 रावत।
2. हिमालय में उपनिवेशवाद और पर्यावरण, सुरेन्द्र सिंह बिष्ट।
3. प्रोजेक्ट कार्य- उत्तराखण्ड का संकटग्रस्त आदिम समाज वनराजि, डॉ0 पुष्पेश पाण्डे।
4. जनजातीय विकास- मिथक एवं यथार्थ, नरेश वैद्यय।
5. शोध कार्य- अनुसूचित जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता (कुमाऊँ की जनजातियों के विशेष सन्दर्भ में), डॉ0 भुवन तिवारी।
6. शोध पत्र- ए ट्राईब ऑफ उत्तराखण्ड एप्रोच टू ट्राईबल वैलफेयर, डॉ0 पुष्पेश पाण्डे।

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय आदिवासी- उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठ भूमि, एल0 पी0 विद्यार्थी।
2. नैनीताल की बुक्सा जनजाति, बालादत्त दानी।
3. जनजातीय समाज- हरीश चन्द्र उप्रेती।
4. ट्राईब्स ऑफ उत्तरांचल- डॉ0 बी0 एस0 बिष्ट।
5. मध्य हिमालयी जौनसार भाभर ऑचल (कल और आज) 'जौनसारी जनजाति का समग्र अध्ययन, प्रो0 गिरधर सिंह नेगी एवं डॉ0 मुजुल जोशी।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनजातीय समाज क्या है? उत्तराखण्ड की प्रमुख जनजातियों के विषय में विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. जनजातीय विकास के लिए क्या-क्या योजनाएं है?
3. जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र की विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 3 आपदा प्रबन्धन

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 आपदाओं के प्रकार
    3.2.1 प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार
        3.2.1.1 ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ
        3.2.1.2 वायुमण्डलीय या बहिजति प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ
        3.2.1.3 संचयी वायुमण्डलीय प्रकोप/आपदाएँ
    3.2.2 मानवजनित आपदाओं के प्रकार
3.3 आपदा प्रबन्धन
    3.3.1 आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन
    3.3.2 आपदा आने के बाद का प्रबन्धन
3.4 आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्यकलाप
3.5 विश्व स्तर पर आपदा प्रबन्धन के कार्यक्रम
3.6 भारत के सम्बन्ध में आपदा प्रबन्धन
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

सामान्य भाषा में आपदा (Disaster) का अर्थ है, मुसीबत या संकट। पर्यावरण में हुए अचानक, अकल्पनीय बदलावों को जिससे अपार जन-धन की क्षति होती है को पर्यावरणीय प्रकोप कहा जाता है। यद्यपि इन चरम घटनाओं को व्यक्त करने के लिए तीन वैकल्पिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- पर्यावरण प्रकोप (Envirnoment Harzard), पर्यावरण आघात (Environmental Stresses) तथा पर्यावरण विनाश/आपदा (Environmental Disaters) परन्तु वर्तमान में पर्यावरणीय विनाश/आपदा को ही सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयोग किया जाता है।

पर्यावरण प्रकोपों की तीव्रता का आकलन उनके द्वारा की गयी जन-धन की क्षति की मात्रा के आधार पर किया जाता है। अतः सभी चरम घटनाएँ सदैव प्रकोप नहीं होती हैं। यह उसी समय प्रकोप या आपदा होती हैं, जब इनके द्वारा मानव समाज को क्षति पहुँचायी जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक या मानव जनित चरम घटनाओं को, जिनके द्वारा प्रलय एवं विनाश की स्थिति हो जाती है तथा जन-धन की क्षति होती है, को पर्यावरणीय प्रकोप या विनाश कहते हैं।

UNDRC (United Nations Disaster Relief Coredinator) की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में घटने वाले समस्त प्राकृतिक आपदाओं का 90 प्रतिशत भाग विकासशील देशों या तीसरी दुनियाँ के देशों में घटित होता है, क्योंकि अधिकांश विकासशील देश उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों में स्थित हैं जहाँ, वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा आये दिन कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे- बाढ़, सूखा, वनाग्नि आदि। यद्यपि यह रिपोर्ट पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है, क्योंकि आपदाओं को किसी भी राजनैतिक या आर्थिक सीमा के अन्तर्गत नहीं बाँधा जा सकता है।

M. Hashizume (1989) के अनुसार, विकासशील देश प्रकोपों से प्रायः पीड़ित रहते हैं। वास्तव में वे प्रकोपों के साथ रहते हैं, क्योंकि विकासशील देश आर्थिक विकास की गति को तीव्रता से पाने की होड़ में प्राकृतिक/पर्यावरणीय शक्तियों का आकलन किये बिना ही परियोजनाओं का विस्तार करते जाते हैं।

यद्यपि इन प्राकृतिक व मानवजनित चरम विनाशकारी घटनाओं को पूर्णतया नहीं रोका जा सकता है परन्तु मजबूत सूचना तंत्रों, वैज्ञानिक उपकरणों तथा सुनियोजित योजनाओं के द्वारा इन आपदाओं से होने वाली क्षति को न्यूनतम करने के प्रयास को ही आपदा प्रबन्धन कहा जाता है।

किसी भी प्रबन्धन जिसके लिए प्रबन्धन किया जाता है की विषय वस्तु से अवगत होना आवश्यक होता है। इसी प्रकार आपदा प्रबन्धन हेतु आपदा के स्वरूपों, आपदा के कारणों को जानना तथा उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है ताकि उनका उचित प्रबन्धन किया जा सके।

TORIORDAN (1971) के अनुसार, ''प्रबन्धन का तात्पर्य होता है, विभिन्न वैकल्पिक प्रस्ताव में से उपयुक्त प्रस्तावों का विवेकपूर्ण चयन करना, ताकि वह निर्धारित एवं इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। जहाँ तक सम्भव होता है प्रबंधन के अन्तर्गत अल्पकालिक (Shortterm) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक या कई रणनीतियां अपनायी जाती हैं, किन्तु दीर्घकालीक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी भरपूर व्यवस्था रहती है।''

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आपदा किसे कहते हैं तथा आपदा प्रबन्धन के बारे में समझ सकेंगे।
- आपदा के स्वरूपों के बारे में, उनसे घटित होने वाली धन-जन की हानि के बारे में समझ सकेंगे।
- प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं के अन्तर को स्पष्ट कर पायेंगे।
- आपदा-प्रबन्धन के सम्बन्ध में सुस्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

3.2 आपदाओं के प्रकार

उत्पत्ति के कारकों के आधार पर आपदा को दो वर्गों में बाँटा जाता है- प्राकृतिक आपदा और मानव जनित आपदा।

आपदा के इन प्रकारों के विषय में विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं।

3.2.1 प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार

निम्न चार्ट द्वारा आपदा के कारकों को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है- ग्रहीय(ग्रहों) प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ और पृथ्व्येत्तर (पृथ्वी या उसके वायु मंडल के बाहर) प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ।

1. ग्रहीय प्राकृतिक आपदाएँ- ग्रहीय प्राकृतिक आपदाएँ वे आपदाएँ हैं जो पृथ्वी के अन्तरतम् से तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न होती हैं। मुख्यतः ज्वालामुखी, भूकम्प, बड़े पैमाने पर होने वाले भूस्खलन, हिमस्खलन आदि को सम्मिलित किया जाता है।
2. पृथ्व्येत्तर प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ- ये वायुमण्डलीय दशाओं द्वारा जन्म लेती हैं।

3.2.1.1 ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ

अधिकांशतः प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति महाद्वीपीय एवं महासागरीय प्लेटों के संचलन से होती है और इन प्लेटों का संचलन पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न संवहनीय तरंगों के कारण होता है। इन आपदाओं में भूकम्प तथा ज्वालामुखी सर्वाधिक विनाशकारी होते हैं। अतः इन आपदाओं के बारे में विस्तृत रूप से जानना भी आवश्यक है।

1. **भूकम्प-** भूकम्प का आगमन पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तापीय दशाओं में परिवर्तन एवं विवर्तनिक(Tectonic) घटनाओं के कारण होता है। भूकम्प की तीव्रता (Intensity) तथा परिणाम (Magnitude) का मापन रिक्टर मापक (Richter Scale) के आधार पर किया जाता है। भूकम्प की उत्पत्ति के केन्द्र को भूकम्प मूल (Earthquake Origin) कहते हैं। भूकम्प मूल इस तरह सदा धरातलीय सतह के नीचे रहता है। धरातलीय सतह के जिस भाग पर सर्वप्रथम भूकम्पी तरंगों को अंकित किया जाता है, अधिकेन्द्र कहा जाता है।

   भूकम्पों की तीव्रता तथा उसके आपदापन्न प्रभावों का निर्धारण भूकम्पीय तीव्रता के आधार पर नहीं किया जाता है, बल्कि किसी क्षेत्र विशेष में धन-जन की क्षति की मात्रा के आधार पर किया जाता है। कोई भूकम्पीय आपदा उस समय अधिक होती है, जब किसी घने आबादी क्षेत्र में भूकम्प आता है।

   कभी-कभी साधारण भूकम्प भी आपदापन्न प्रकोप बन जाता है। जब उसके प्रभाव द्वारा भूस्खलन, बाढ़, आग, सुनामी तरंगों की उत्पत्ति होती है तो ये घटनाएं अपार हानि का कारण बन जाती हैं।
2. **ज्वालामुखी-** ज्वालामुखी भी प्राकृतिक आपदाओं में महत्वपूर्ण है। परन्तु ज्वालामुखी भूकम्प प्रकोप के विपरीत आपदा भी होती है और मानव समाज के लिए वरदान भी। क्योंकि एक तरफ तो ज्वालामुखी के अचानक प्रचण्ड उद्-गार तथा उससे निकलने वाला तृप्त लावा से मानव बस्तियों, कृषि क्षेत्र, मानव सम्पत्ति आदि नष्ट हो जाती है तो दूसरी ओर ज्वालामुखी लावा के कारण उर्वरक मिट्टियों का निर्माण होता है। प्लेट विर्वतनिक सिद्धान्त के आधार पर ज्वालामुखी क्रिया एवं ज्वालामुखी उद्-गार को स्पष्ट समझा जा सकता है।

   ज्वालामुखी उद्-गार प्लेटों के किनारों से पूर्णतया सम्बन्धित है। प्लेटों की सीमाओं, किनारों के प्रकार ज्वालामुखी- उद्-गार की प्रकृति तथा तीव्रता को प्रभावित करते हैं।

   ज्वालामुखी उद्-भेदन से मानव समाज की भारी धन-जन की हानि होती है। विस्फोटक उद्-गार, तप्त लावा के प्रवाह, विखंडित पदार्थों के नीचे गिरने, अग्निकाण्ड, विषाक्त गैसों की उत्पत्ति द्वारा मानवकृत संरचनाओं जैसे- मकानों, कारखानों, रेलों, सड़कों, हवाई अड्डों, बाँधों, जलाशयों, वनों, मानव सम्पत्ति जन्तुओं तथा मानव जीवन की अपार क्षति होती है।

   ज्वालामुखी के समय निकलने वाला तप्त एवं तरल लावे की अपार राशि तीव्र गति से धरातलीय सतह पर प्रवाहित होने से मानवकृत रचनाएँ लावा के नीचे दबकर नष्ट हो जाती हैं।

   कभी-कभी ज्वालामुखियों का उद्-गार इतना अचानक एवं प्रचण्ड होता है कि लोगों को अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर जाने का समय ही नहीं मिल पाता। ज्वालामुखी के उद्-गार के पहले तथा बाद में उत्पन्न भूकम्पों द्वारा जनित सुनामि के कारण तटवर्ती भागों में जान-माल की अपार क्षति होती है।

ज्वालामुखी उद्-गार तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं के कुछ ऐसे परिणाम होते हैं, जिनसे कई प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं-

- जोकुलहलुपस का निर्माण- ज्वालामुखी क्रिया के दौरान तापमान में वृद्धि के कारण हिम चोटियों के नीचे हिम के पिघलने के कारण विशाल जलराशि की स्थिति को श्रवानससीसंनचले कहते हैं। कभी-कभी हिम सतह के नीचे हिम द्रवित जल के आयतन में इतनी वृद्धि हो जाती है तथा उसका दबाव इतना अधिक हो जाता है कि ऊपर स्थित हिम की चादर टूटती है और हिम द्रवित जल तेजी से ऊपर उछलता हुआ बाहर निकलता है जिसकी गति 4.00,000 घन मीटर प्रति सेकिण्ड होती है, जिससे अचानक पर्यावरणीय संकट पैदा हो जाता है।
- ज्वालामुखी धूल तथा जलवायु परिवर्तन- ज्वालामुखी उद्-गार के समय निकलने वाली धूल तथा राख की विशाल मात्रा के वायुमण्डल में पहुँचने पर मौसम तथा जलवायु में प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर परिवर्तन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।
- ज्वालामुखी उद्-गार तथा पारिस्थितिकीय परिवर्तन- वैज्ञानिकों का मानना है कि ज्वालामुखी उद्-गार से निकलने वाले धूल एवं राख के धरातल पर पुनः वापस आने से कुछ जातियाँ का सामूहिक विलोप हो जाता है। इस परिकल्पना के आधार पर कई वैज्ञानिकों का मत है कि आज से 60 मिलियन वर्ष पूर्व डायनासोर का सामूहिक विलय उस समय हुई अत्यधिक ज्वालामुखी क्रिया के कारण हुआ था। इसके अतिरिक्त विशाल लावा-राशि के धरातलीय सतह पर फैलने के कारण वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु नष्ट हो जाते हैं। जिस कारण पारिस्थितिकीय असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

3.2.1.2 वायुमण्डलीय या बहिर्जति प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ

वायुमण्डलीय आपदाएँ तथा जलवायु की चरम घटनाओं से सम्बन्धित होती है। इन पर्यावरणीय प्राकृतिक प्रकोपों की उत्पत्ति वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा होती है। इन प्रक्रमों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। असामान्य तथा आकस्मिक (घटनाएँ) आपदाएँ इसके अन्तर्गत उष्ण कटिबन्धीय तूफान एवं चक्रवात (टाइफून, हरिफेन, टारनैडो) एवं प्रचण्ड वायुमण्डलीय बिजली व अग्निकाण्ड शामिल हैं।

1. **उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात-** उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात सर्वाधिक शक्तिशाली विध्वंशक तथा प्राणघातक वायुमण्डलीय चक्रवात होते हैं। इनका औसत व्यास 650 किमी तक होता है। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात अपने उच्च वायु वेग 180 से 400 किमी प्रति घंटा, उच्च ज्वारीय तरंग, उच्च जल वर्षा की तीव्रता 2000 मिलीमीटर प्रकृति की अत्यधिक न्यून वायु दाब तथा कई दिन तक स्थायी रहने के कारण प्रचण्ड आपदापन्न प्राकृतिक प्रकोप बन जाते हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की तूफानी जाति वाली हवाओं, मूसलाधार वर्षा तथा सागरीय जल के तटीय स्थलीय भाग पर अतिक्रमण आदि का सफल संचयी प्रभाव इतना अधिक हो जाता है कि ये चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों में महाप्रलय उपस्थित कर देते हैं।

   चक्रवातीय प्रकोप से भारत के पूर्वी तथा बांग्लादेश के दक्षिण तटीय भाग अक्सर प्रभावित होते हैं। बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात भारत के पूर्वी तटीय भागों को प्रायः दुष्प्रभावित करते हैं। इस भाग में प्रायः 12 से 13 महाविनाशकारी चक्रवात प्रतिवर्ष आते रहते हैं। सन् 1970 से अब तक लाखों लोगों की मृत्यु हो गई है, मकान नष्ट हो गये तथा हजारों हेक्टेयर भूमि बर्बाद हो गयी। मिट्टी के ऊपर नमक की मोटी परत के जमाव के कारण अधिकांश तटीय भाग बंजर हो गया।

2. **हरिकेन-** हरिकेन प्रायः संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी तटवर्ती भागों को प्रभावित करते हैं। हरिकेन से सबसे पीड़ित क्षेत्र लूसियाना, टैक्सास, अलबामा तथा फ्लोरिडा आदि हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की आवृत्ति के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका के लूसियाना प्रान्त में स्थित मिसीसिपी डेल्टा भारत एवं बांग्लादेश के गंगा डेल्टा के समान ही है। परन्तु हरिकेन से होने वाली अपार जन-धन की हानि कम होती है, क्योंकि विकसित देश होने के कारण तकनीकी में भी उन्नत है और चक्रवातों के आगमन की अग्रिम सूचना समय पर दे दी जाती है और लोग भारी आपदा सामना करने के लिए सावधान हो जाते हैं।
3. **टारनैडो-** मुख्य रूप से दक्षिणी एवं पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका को प्रभावित करते हैं। स्थानीय प्रचण्ड तथा विनाशकारी तूफानों में टारनैडो सबसे छोटे होते हैं। परन्तु मानव जीवन एवं सम्पत्ति की दृष्टि से सर्वाधिक घातक तथा खतरनाक होते हैं।

   सामान्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में टरनैडो द्वारा प्रतिवर्ष 100 मिलियन डालर मूल्य की सम्पत्ति तथा 450 व्यक्तियों की मृत्यु होती है। टारनैडो का सर्वाधिक घातक भाग उसके साथ चलने वाले टारनैडो प्रक्षेपास्त्र ,टारनैडो की गति के कारण पेड़ उखड़ जाते हैं तथा भवनों की लोहे तथा चादरों की बनी छतें उखड़ जाती हैं। ये वस्तुएँ टारनैडो के साथ उसकी प्रचण्ड गति के कारण हवा के साथ तीव्र गति से उड़ती हुई चलती है (इन्हें टारनैडो मिसाइल कहते हैं।) और मानव जीवन को अपार क्षति पहुँचाती है।

   स्थानीय प्रचण्ड विनाशकारी तूफानों में तडितझंझा को भी सम्मिलित किया जाता है।

3.2.1.3 संचयी वायुमण्डलीय प्रकोप/आपदाएँ

लम्बे समय तक बनी रहने वाली मौसम की घटनाओं के प्रभावों के संचयन के कारण उत्पन्न होने वाले प्रकोपों को संचयी वायुमण्डली प्रकोप कहते हैं। जब अति गर्म एवं अति शुष्क दशाएँ लगातार कई सप्ताह तक कायम रहती हैं तो ताप लहर के रूप में पर्यावरणीय प्रकोप उत्पन्न हो जाता है जिसका मनुष्यों, वनस्पतियों तथा जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उत्तरी भारत के मैदानी भागों में मई तथा जून के महीनों में लू (स्ववव) इसका प्रमुख उदाहरण है।

इसी प्रकार कई सप्ताह तक अति शीत दशा के कारण प्रचण्ड हिमपात होने लगता है तथा शीत लहर के रूप में आपदापन्न/संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संचयी वायुमण्डलीय प्रकोपों में बाढ़ तथा सूखा, तापलहर तथा हिमपात एवं शीत लहर को सम्मिलित किया जाता है। आईये इनमें से कुछ का अध्ययन करते हैं-

1. **बाढ़ प्रकोप-** बाढ़ का सामान्य अर्थ होता है विस्तृत स्थलीय भाग का लगातार कई दिनों तक जलमग्न रहना। वास्तव में बाढ़ प्राकृतिक पर्यावरण का एक गुण है तथा अपवाह बेसिन के जलीय चक्र का एक संघटक है। बाढ़ एक प्राकृतिक घटना व अति जल वर्षा का परिणाम है। यह मात्र उस समय आपदा बन जाती है जब इसके द्वारा अपार धन-जन की हानि होती है। मानवीय क्रियाकलापों द्वारा बाढ़ के परिणाम, आवृत्ति तथा विस्तार में वृद्धि हो जाती है। अतः बाढ़ प्रकोप प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों हैं।

   अधिकतर बाढ़ का सम्बन्ध विस्तृत जलोद मैदानों में प्रवाहित होने वाली जलोद नदियों से होता है। विश्व के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 35 प्रतिशत क्षेत्र पर बाढ़ मैदान (Flood Plains) का विस्तार है जिसमें विश्व की लगभग 16.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।

   भारत में विध्वंशक बाढ़ एवं उनसे उत्पन्न प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति तथा धन-जन की हानि पहुँचाने वाली प्रमुख नदियाँ गंगा, तथा उसकी सहायक यमुना, रामगगां, घाघरा, गोमती, गंडक, कोसी, दामोदर आदि उत्तर भारत में हैं। उत्तर पूर्वी भारत में ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण भारत में कृष्णा, गोदावरी, महानदी, नर्मदा, तापी आदि नदियों के डेल्टाई भाग हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मिसीसिपी तथा मिसौरी नदी, चीन में यांगसिटी तथा यलो नदी, बर्मा में इरावदी, पाकिस्तान में सिंध, नाइजीरिया में नाइजर, इटली में पो, ईराक में दजला, फरात आदि नदियां अपने अपवाह बेसिन में विध्वंशक बाढ़ का कारण बन जाती हैं।

यद्यपि नदियों की बाढ़ प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों कारकों का प्रतिफल है। अतः जलोढ़ नदियों की बाढ़ों के वास्तविक कारण अत्यन्त जटिल हो जाते हैं। इन कारणों में प्राकृतिक एवं मानवजनित के सापेक्षिक महत्व में स्थानीय विभिन्नताएँ पायी जाती हैं।

नदियों में प्राकृतिक और मानव भूल से बाढ़ के प्रमुख हैं-

- लम्बी अवधि तक उच्च तीव्रता वाली जल वर्षा। घनघोर वर्षा।
- नदियों के विसर्पित (घुमावदार) मार्ग।
- विस्तृत बाढ़-मैदान।
- नदियों की जलधारा की प्रवणता में अचानक परिवर्तन।
- भूस्खलन तथा ज्वालामुखी-उद्-गार से नदियों के स्वाभाविक प्रवाह में अवरोध।
- नदियों की घाटियों तथा जलधाराओं की विशेषताएँ।
- निर्माण कार्य, नगरीकरण।
- नदियों के जलमार्ग में परिवर्तन।
- नदियों पर बाँधों, पुलों एवं भण्डारों का निर्माण।
- कृषि कार्य, वन विनाश, भूमि उपयोग में परिवर्तन आदि प्रमुख कारण हैं।

उपरोक्त सभी कारणों का नदियों की बाढ़ की स्थिति उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

2. **सूखा प्रकोप-** सूखे का अविभार्व जल के अभाव में संचयी प्रभावों से होता है। सूखा अत्यधिक घातक प्राकृतिक प्रकोप है। सूखे के कारण कृषि तथा प्राकृतिक वनस्पति की भारी मात्रा में क्षति होती है तथा अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार उस दशा को सूखा कहते हैं, जबकि किसी भी क्षेत्र में सामान्य वर्षा से वास्तविक वर्षा 75 प्रतिशत से कम होती है।

   सूखे को दो वर्गों में विभक्त किया गया है- प्रचण्ड सूखा, जिसमें वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा के 50 प्रतिशत से अधिक होता है। सामान्य सूखा, जिसमें वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा से 50 से 25 प्रतिशत के बीच रहता है।

   सूखे का जीवमण्डल पारिस्थितिक तंत्र के सभी जीवन रूपों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जीव-जन्तु तथा पौधे सभी प्रत्यक्ष रूप से जल पर निर्भर करते हैं।

   वास्तव में दीर्घकालिक सूखे का पारिस्थितिकीरण, आर्थिक, जनांकीय तथा राजनैतिक पक्षों पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त पौधों तथा जन्तुओं की महत्वपूर्ण जातियाँ समाप्त हो जाती हैं, क्योंकि वे कठोर सूखे को बर्दास्त नहीं कर पाती हैं। कुछ जन्तु अन्य स्थानों को प्रवजन कर लेते हैं। जिससे उनके स्थान विशेष में कमी हो जाती है। सूखे के कारण आहार की कमी हो जाने के कारण जानवर भुखमरी के कारण मर जाते हैं।

सूखा ग्रसित मुख्य क्षेत्रों में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश आदि हैं। प्रचण्ड सूखे के कारण काफी संख्या में लोग अपने पशुओं के साथ पलायन कर जाते हैं।

उत्तर अफ्रीका में उत्तर में सहारा के गर्म एवं शुष्क रोगिस्तानी भाग एवं दक्षिण में सवाना प्रदेश के बीच पश्चिम से पूर्ण फैले विस्तृत क्षेत्र को सहेल प्रदेश कहते हैं। यह प्रदेश प्रायः सूखे की चपेट में आता रहता है, जिस कारण वनस्पतियों, जन्तुओं एवं मानव समुदाय की अपार क्षति उठानी पड़ती है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत मरिटेनियर, सेनेगल, माली, अपर वोल्टा, नाइजर, नाइजीरिया, चाड़, यूगाण्डा तथा इथिओपियर देशों के भागों को सम्मिलित किया जाता है। इथोपियों में सूखे के कारण आज तक लाखों लोग कुपोषण तथा रोगों से मृत्यु की भेंट चढ़ गए हैं।

आस्ट्रेलिया में सूखा आम घटना है। सूखे की घटना बार-बार घटती है। उसका प्रभाव विस्तृत क्षेत्रों पर पड़ता है। सन् 1895 से 1902 तक आस्ट्रेलिया के प्रचण्ड सूखे की स्थिति का आविर्भाव हुआ है। जिसमें 106 मिलियन मवेशी खत्म हो गए। सूखे के कारण कृषि के क्षेत्र में भारी कमी हो गयी है।

ग्रेट ब्रिटेन में सूखे के कारण सन् 1975-1976 में घरेलू एवं औद्योगिक उपयोग के लिए आवश्यक जल की आपूर्ति के लिए घोर संकट उत्पन्न हो गया। घर-कृषि उत्पादन में काफी कमी हो गयी।

भारत के कृषि मंत्रालय ने जलवर्षा के वितरण, सूखे की घटना की आवृत्ति तथा सिंचाई के प्रतिशत के आधार पर तथा सिंचाई आयोग ने सिंचाई तथा जलवर्षा के आधार पर देश में सूखा प्रभावित क्षेत्रों का निर्धारण किया है।

सिंचाई आयोग के अनुसार वे क्षेत्र सूखाग्रस्त क्षेत्र होते हैं, जहाँ पर औसत वार्षिक वर्षा 1000 मिलीमीटर से कम होती है। देश के 20 प्रतिशत तथा उससे अधिक भाग में औसत वार्षिक जल वर्षा का 75 प्रतिशत से कम जल वर्षा प्राप्त होती है तथा कृषिगत क्षेत्र के 20 प्रतिशत से कम भाग पर सिंचाई होती है।

उपरोक्त भौतिक कारणों जिनके द्वारा धरातल पर प्रायः आपदाएं उत्पन्न होती हैं। इनके साथ ही वैज्ञानिकों की अवधारणा है कि पृथ्वी के विगत इतिहास में पृथ्वी तथा बाहरी वस्तुओं जैसे- एस्टेरायड, मेट्रोइट्स तथा कामेट से टक्कर के कारण उत्पन्न प्रलयकारी घटना को ग्रहेतर या पृथ्व्येतर प्रकोप या विनाश कहते हैं।

इन टकरावों से अपार धूल-राशि का उद्-गार, महासागरों में ज्वारीय तरंगों का जनन, हरिकेन की उत्पत्ति, भूतल पर गर्तों एवं क्रैटर का निर्माण, सागर तल में ज्वालामुखी क्रिया तथा स्थालाकृतियों में परिवर्तन हो जाता है।

3.2.2 मानवजनित आपदाओं के प्रकार

मानवजनित आपदा पर्यावरणीय प्रकोप को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है-

1. मानव जनित भौतिक प्रकोप। जैसे- भूकम्प, भूस्खलन, तीव्र मृदा अपरदन।
2. मानव जनित रासायनिक प्रकोप। जैसे- जहरीले रसायनों का विमोचन तथा जमाव नाभिकीय विस्फोट, तेल वाहक लवणों से खनिज तेल का सांगवीय जल में रिसाव आदि।
3. मानव जनित जीवीय प्रकोप। जैसे- मानव जनसंख्या विस्फोट जलीय भागों में पोषक तत्वों की अत्यधिक वृद्धि होने से कुछ पौधों में अपार वृद्धि आदि।

वास्तव में भूकम्प प्राकृतिक घटना है तथा इसकी उत्पत्ति पृथ्वी के अन्तरतम में उत्पन्न अन्तजति बलों के कारण होती है। किन्तु मानव द्वारा भूमिगत जल, खनिज तेल व अत्यधिक गहराई तक खनिजों के खनन, निर्माण कार्यों जैसे- सड़क, बाँध, जलभण्डार आदि के निर्माण के लिये डायनामाईट द्वारा चट्टानों का उड़ाया जाना नाभीकीय परीक्षण तथा विस्फोट, बड़े-बड़े जल भण्डारों में अपार जलराशि (डैम) के संग्रह आदि के द्वारा भी बड़े परिणाम वाले खतरनाक भूकम्पों की उत्पत्ति होती है।

ग्रीस में 'मरेथान बाँध' के कारण सन् 1929 का भूकम्प, संयुक्त राज्य अमेरिका में 'हूबर बाँध' तथा भारत में महाराष्ट्र प्रान्त के सतारा जिले, जिसमें 'कोयना बाँध' के कारण सन् 1967 का भूकम्प, इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

इसके अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में जमीन के नीचे जहरीले रसायनिक तत्वों का जमाव उस क्षेत्र के लोगों के लिए घातक, आपदा के रूप में परिलक्षित होता है।

नियाग्राफाल्स नगर के पास लोव नहर के लिए सन् 1892 में खोदी गई खाई के बाद में छोड़ दिया गया। बाद में इस खाई का प्रयोग कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों खासकर जहरीले रासायनिक तत्वों के जमाव के लिए किया जाने लगा। 80 से अधिक जहरीले रासायनिकों का जमाव इस खाई में सन् 1953 तक होता रहा। कुछ समय बाद इस स्थान पर नियाग्रफाल्स नगर के उपनगर का विकास किया गया, किन्तु सन् 1977 में अत्यधिक जलवृष्टि के कारण इस मानवजनित रासायनिक जमाव में अचानक विस्फोट हो गया, जिससे लोगों के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। जैसे- महिलाओं में गर्भापात की दर में अचानक वृद्धि हो गयी, रक्त एवं जिगर की विसंगतियाँ, जन्म विकृति आदि कई प्रकार की शारीरिक विकृति उत्पन्न हो गयी।

मनुष्य की असावधानी के कारण तेल वाहक जहाजों से खनिज तेल के अधिक मात्रा में रिसाव के कारण सागरीय जल की सतह पर तेल की पतली परतें बन जाती हैं जो जल की सतह पर तेली से फैलती हैं। इसके कारण प्रभावित सागरीय क्षेत्रों में सागरीय जीव मर जाते हैं।

नाभिकीय संस्थानों में अचानक गड़बड़ी हो जाने से प्राणघातक आपदाऐं उत्पन्न हो जाती हैं। इस तरह की दुर्घटनाओं का प्रभावित क्षेत्रों के पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं, मनष्यों न केवल तात्कालिक दुष्प्रभाव होते हैं, बल्कि इनका दुष्परिणाम वर्षों तक बना रहता है। मानव की भावी पीढ़ियाँ रेडियोएक्टिव तत्वों से दुष्प्रभावित होती रहती है।

सोवियत रूस में चरनोबिल में स्थित नाभिकीय संयंत्र की सन् 1989 की दुर्घटना तथा त्रासदी मानव जनित भीषण प्रकोप तथा विनाश का उदाहरण है। भारत में सन् 1984 में भोपाल गैस त्रासदी मनुष्य की लापरवाही के कारण उत्पन्न होने वाले भयंकर प्राणघातक प्रकोप का उदाहरण है।

कभी-कभी लोलुपतावश भी मनुष्य जानबूझकर घातक प्रकोप तथा आपदाएँ उत्पन्न करता है। प्रायः युद्ध के समय ऐसा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के समय (सन् 1945) में जापान के दो नगरों, नागासाकी तथा हिरोशिमा पर ऐटम बम गिराया गया। इन आणविक बमों के विस्फोट द्वारा उत्पन्न घातक संक्रमण के कारण लाखों लोगों की मृत्यु हो गयी और आज भी वहाँ के लोग बर्बरता का खामियाजा, अपंगता या शारीरिक विकृतियों के रूप में भुगत रहे हैं।

इसके अलावा युद्ध के समय जहरीली गैंसों तथा संक्रामक रोग फैलाने वाले कीटाणुओं का प्रयोग करता है तथा निर्माण कार्यों तथा भूमि उपयोग में परिवर्तनों द्वारा प्राकृतिक प्रकोपों की गति तेज कर देता है। फलस्वरूप भूस्खलन द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में वन-विनाश, भवनों तथा सड़कों के कारण भूस्खलन की आवृति तथा परिणाम में वृद्धि हो जाती है।

3.3 आपदा प्रबन्धन

अभी तक हमने जाना कि वास्तव में आपदाएँ क्या होती हैं तथा उनसे मानव जीवन किस तरह प्रभावित होता है। किन्तु अब प्रश्न उठता है कि आपदाओं को जान लेना या उनका ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से ही आपदाओं का सामना नहीं किया जा सकता, इसलिए आपदा प्रबन्धन एक मुख्य विषय के रूप में उभरकर सामने आता है।

प्राकृतिक आपदाओं के न्यूनीकरण तथा प्रबन्धन के अन्तर्गत तीन मुख्य पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

1. प्रकोपों के सम्भावित आगमन की भविष्यवाणी करना।
2. प्रकोप से प्रभावित क्षेत्र के लोगों के लिए राहत सामग्री को तुरन्त पहुँचाना।
3. प्राकृतिक प्रकोपों तथा आपदाओं के साथ समायोजन के उपाय करना।

आपदा प्रबन्धन की तैयारी के मुख्य उद्देश्य हैं, आपदा प्रभावित क्षेत्रों में कम से कम समय में प्रभावी तरीके से सहायता पहुँचाना तथा समयबद्व सुनियोजित तरीकों से त्वरित सक्षम संगठनों के द्वारा आपातकालीन परिस्थितियों

में धन-जन की हानि को कम करना होना चाहिए। यद्यपि आपदा प्रबन्धन में दीर्घकालिक व अल्पकालिक प्रयासों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। परन्तु इस दीर्घकालिक व अल्पकालिक प्रयासों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

- आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन।
- आपदा आने के बाद का प्रबन्धन।

3.3.1 आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन

आपदा आने से पूर्व के प्रबन्धन में, विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकि सहयोग से भविष्यवाणी या चेतावनी का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत रिमोट सैंसिंग जी0आई0एस0 तथा वायु आकाश सर्वेक्षणों के द्वारा चक्रवात, बाढ़, सुनामी आदि जैसे प्राकृतिक आपदाओं की सूचना पूर्व में जारी की जा सकती है। जिससे आपदा आने के पूर्व ही लोगों को सुरक्षित स्थानों में भेजा जा सकता है, जिससे कि जन-धन की हानि को न्यूनतम किया जा सकता है। उक्त तकनीकी आधारों पर आपदा प्रभावित क्षेत्रों का पूर्व में मूल्यांकन करते हुए समस्याग्रस्त क्षेत्रों का मानचित्र तैयार किया जा सकता है। जिससे कि आपदा ग्रस्त क्षेत्रों में आम जनता को प्रकोपों के प्रति जागरूक करते हुए समय पर सूचना प्रदान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त आपदा आने के पूर्व के सम्भावित खतरों से बचने के लिए संरचनात्मक एवं निर्माण कार्य किया जा सकता है।

यथा बाढ़ सम्भावित क्षेत्रों का आकलन करते हुए पूर्व में ही सुरक्षात्मक दिवारों का निर्माण करना, नदी के जलागम क्षेत्रों में वृहद वृक्षारोपण करना, बाढ़ के समय अपनाये जाने वाले सुरक्षा उपकरण आदि के बारे में लोगों को प्रेरित करना। इसी प्रकार सुनामी, चक्रवातों के प्रभावित क्षेत्रों के मानचित्र तैयार किये जा सकते हैं। साथ ही साथ रिमोट सैंसिंग तथा जी0आई0एस0 तकनीकी द्वारा प्राप्त सूचनाओं को चेतावनी प्रणाली के रूप में विकसित किया जाना। तकनीकी प्रणालियों की सहायता से अमेरिका जैसे विकसित देशों में चक्रवातों की उत्पत्ति तथा उनके गमन पथ की लगातार सूचना के आधार पर अग्रिम चेतावनी दी जाती है, जिससे समय रहते लोगों को सुरक्षित स्थानों में भेजा जाता है। जिसके द्वारा जनहानि को न्यूनतम स्तर पर लाया जा सकता है। इस प्रकार का उदाहरण जापान जैसे भूकम्प प्रभावी देश में किया जाता है। जहां भूकम्परोधी भवनों का निर्माण तथा लोगों को जागरूक करके जन-धन की हानि कम की गई है।

आपदा न्यूनीकरण के विभिन्न कार्यक्रमों को दीर्घकालीन स्तरों पर तैयार किया जा सकता है, जिसमें प्रकोपों से सम्बन्धित शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। इन कार्यक्रमों में वैज्ञानिकों, अभियन्ताओं, नीतिनिर्धारकों, प्रशासकों तथा आम जनता को सम्मिलित करते हुए एक ठोस आपदा प्रबन्धन की नीति तैयार की जा सकती है। जिसमें- 1. मजबूत सूचना तंत्र का विकास। 2. वैज्ञानिक उपकरणों का आधिकारिक प्रयोग। 3. आपदाग्रस्त क्षेत्रों को वैज्ञानिक आधार पर चिन्हित करना। 4. उसी के अनुरूप वैज्ञानिक तकनीकी के इस्तेमाल हेतु प्रेरित करना। 5. लोगों को आपदा के समय अपनाये जाने वाले सुरक्षा उपकरणों से शिक्षित करना। 6. ऐसे संगठनों को तैयार करना जो कि स्थानीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक परिस्थितियों से अवगत हों। 7. राहत सामग्रियों यथा भोजन, टैंट, चिकित्सा, वैज्ञानिक उपकरणों का यथोचित स्थान पर भण्डारण। 8. वैकल्पिक यातायात व सूचना तंत्र की स्थापना करना। 9. वैज्ञानिक अध्ययनों, शोध के पश्चात विकास परियोजनाओं को लागू करना। 10. सशक्त नीतियां बनाना तथा उनका क्रियान्वयन दृढ़ता से लागू करना। 11. स्थानीय लोगों को जागरूक करना तथा उनसे सहयोग प्राप्त करके आपदा प्रबन्धन की योजनाओं में उनकी अधिकाधिक सहभागिता करना।

3.3.2 आपदा आने के बाद का प्रबन्धन

यद्यपि वर्तमान समय में तकनीकि सहायता के द्वारा कई प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं का पूर्वानुमान व मूल्यांकन किया जाता है। परन्तु कुछ प्राकृतिक घटनाएँ बिना किसी चेतावनी के एकाएक घटित हो जाती हैं, जिनके लिए हमें आपदा प्रबन्धन की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए हमें ऐसी कार्ययोजना तथा संगठन की आवश्यकता होती है, जो कि समस्त विभागों के बीच आपसी तालमेल व समन्वय के साथ आपदाग्रस्त क्षेत्रों में त्वरित सहायता पहुँचाने का कार्य सुचारु रूप से कर सके। इस संगठनों के पास उस क्षेत्र की समस्त भौगोलिक जानकारियाँ उपलब्ध होनी चाहिए ताकि आपदा के समय उस क्षेत्र पर तत्काल पहुँचा जा सके एवं लोगों को समय पर राहत सामग्री उपलब्ध करवायी जा सके। आपदा आने के उपरान्त आपदा प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नांकित कदम उठा सकते हैं- 1. आपदा आने के बाद के प्रबंधन में तत्काल आपदाग्रस्त क्षेत्रों में पहुँचना। 2. राहतकर्मियों के पास आपदा के निबटारे हेतु आवश्यक उपकराणों का होना। 3. राहत सामग्रियों की उचित वितरण की व्यवस्था। 4. चिकित्सा तथा निवास की उचित व्यवस्था। 5. स्थानीय लोगों से सहायता प्राप्त करना। 6. समस्त सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों के बीच उचित समन्वय व सहयोग होना। 7. मरे हुए जानवरों व शवों का निष्पादन, ताकि कोई महामारी या रोग न फैलने पाए। 8. यातायात व सूचना तंत्र को पुन: बहाल करना। 9. आपदाग्रस्त क्षेत्र के पुनर्वास व पुनर्निमाण की योजना बनाना।

3.4 आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्यकलाप

आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित अनेक कार्यकलापों के निष्पादन की आवश्यकता होती है। आईये इनका अध्ययन करते है-

1. विभिन्न इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रानिक उपकरणों एवं तकनीकी के आधार पर प्रभावित क्षेत्रों का पूर्व मूल्यांकन एवं वृहद मानचित्रों का तैयार किया जाना।
2. उक्त क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों को सम्बन्धित आपदाओं के सम्बन्ध में सूचना के विभिन्न माध्यमों के द्वारा लोगों को सम्बन्धित खतरों से बचने के लिए शिक्षित करना।
3. विभिन्न संचार माध्यमों व वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा पूर्व चेतावनी प्रणाली की स्थापना करना।
4. प्रभावित क्षेत्रों का आकलन करते हुए पूर्व में सुरक्षात्मक एवं संरचनात्मक निर्माण कार्यों का किया जाना।
5. स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना। दक्ष व कुशल राहतकर्मियों के दल का गठन, जिनको कि इस प्राकृतिक व मानवजनित आपदा के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हो तथा उस क्षेत्र की भौगोलिक व सांस्कृतिक जानकारियां का गठन किया जाना चाहिए।
6. आपदाग्रस्त क्षेत्रों में आपतकालीन राहत सामग्री को पहुँचाना।
7. विभिन्न सरकारी व अर्धसरकारी विभागों के बीच समन्वय के साथ काम करना।
8. केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा स्पष्ट नीतियों का निर्धारण करना।
9. विभिन्न प्रकार की आपदाओं हेतु उसी के अनुरूप संगठनों का निर्माण किया जाना। जैसे कि प्राकृतिक आपदा एवं मानवजनित आपदाओं के प्रबन्धन हेतु अलग-अलग संगठनों को पूर्व में तैयार करना।
10. राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय एवं स्थानीय स्तर पर आपदा प्रबन्धन पर चर्चा करना, लोगों को शिक्षित करना, जिसके लिए सरकारी, गैर-सरकारी व वैज्ञानिक संगठनों द्वारा एकत्रित सूचनाओं के अनुरूप एक नीति तैयार करना।

3.5 विश्व स्तर पर आपदा प्रबन्धन के कार्यक्रम

प्रकोपों तथा आपदाओं के शोध से सम्बन्धित तथा प्रकोपों से उत्पन्न प्रभावों को कम करने के लिए चलाये जाने वाले कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं।

SCOPE (Scientific Communicate on Problem of Environment) नामक समिति का गठन सन् 1969 में ICSU (Inter National Councial of Scientific Union) द्वारा पर्यावरण पर मनुष्य के तथा मनुष्य पर पर्यावरण के प्रभावों से सम्बन्धित जानकारी में वृद्धि करना तथा सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों को पर्यावरणीय समस्याओं से सम्बन्धित वैज्ञानिक सूचनाएँ व सुझाव देने हेतु स्थापना की गई।

इसी प्रकार IGBP (Inter National Geospher Biorphere Programme) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भौतिक पर्यावरण के स्थल मण्डलीय, स्थानीय एवं वायुमण्डलीय संघटकों के अध्ययन हेतु सन् 1988 में एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध कार्यक्रम का अभियान शुरू किया गया।

यूनाइटेड नेशन डिजासटर रिलिफ ऑफिस को सन् 1971 में आपदा के समय तुरन्त सहायता पहुँचाने के लिए स्थापित किया गया था। खासकर अन्तर्राष्ट्रीय रैडक्रास और रैड क्रिसैन्ट आन्दोलनों के द्वारा तुरन्त आपदा ग्रस्त क्षेत्र में गैर-सरकारी व सरकारी रूप से सहायता पहुँचाने के लिए स्थापित किया गया। इसके द्वारा आपदा सम्भावित क्षेत्र के लिए पहले से प्लान या योजना बना ली जाती है। मुख्यतः विकसित देशों के लिए जहाँ पर आधुनिक तकनीकी का विकास हुआ हो।

यूनाइटेड नेशन डिजास्टर रिलिफ और्गनाइजेशन का मुख्य उद्देश्य पूरे विश्व में कम से कम खर्च में आपदा से बचाने में अपना पूर्ण सहयोग व सहायता देना है। यद्यपि विश्व स्तर पर प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं के प्रबन्धन हेतु विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। परन्तु इस प्रकार के कार्यक्रमों के साथ ही स्थानीय रूप से भौगोलिक आधारों पर कार्यक्रमों/योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए। वर्ना स्थानीय आधारों पर प्राकृतिक आपदाओं के समय पर कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे तात्कालिक सहायता के स्थान पर प्राप्त राहत सामग्रियों के रख-रखाव की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। जिसका स्पष्ट उदाहरण सन् 1985 के मैक्सिको शहर के विध्वंशकारी भूकम्प के समय राहत कार्यों में समस्या उत्पन्न हो गयी थी। क्योंकि विभिन्न देशों से मैक्सिको शहर के लिए भेजी गयी राहत सामग्रियों व राहत कार्य करने वाली संस्थाएँ पूर्वानुमान पर आधारित थे न कि मैक्सिको शहर की वास्तविक माँगों के आधार पर। जिससे की कुछ ही दिनों में इतनी अधिक राहत सामग्री (खाद्य, टैन्ट, दवाएँ आदि) पहुँच गयी कि उनके रखरखाव व वितरण की समस्या उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार विभिन्न देशों से गये राहतकर्मियों जिनमें डाक्टर, नर्सें तथा बचावकर्मी आदि को स्थानीय भाषा व भौगोलिक क्षेत्र का ज्ञान न होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने व स्थानीय लोगों की भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण भाषा की समस्याएँ उत्पन्न हो गयी। जिसके कारण स्थानीय अधिकारियों को एक ओर राहत सामग्री के रखरखाव व दूसरी ओर भाषा की समस्याओं का सामना करना पड़ा।

अतः इस प्रकार की समस्याओं के निदान के लिए एक सुनिश्चित राहत कार्य की आवश्यकता होती है, ताकि उपलब्ध राहत सामग्रियों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सके।

प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं के लिए जहाँ एक ओर कई प्रकार की राहत सामग्रियों की आवश्यकता होती है, वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की राहत सामग्रियों के भण्डारण व उचित वितरण की व्यवस्था की जानी आवश्यक है। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि स्थानीय आधारों पर राहतकर्मियों को तैयार किया जाय जो कि उस क्षेत्र की भौगोलिक व सांस्कृतिक जानकारियाँ रखते हों तथा स्थानीय आपदाग्रस्त लोगों को अधिकाधिक सहायता कम से कम समय पर पहुँचा सकें। इस प्रकार राहतकर्मियों के संगठनों में स्थानीय स्तर पर उस क्षेत्र के निवासी उस क्षेत्र में

कार्यरत ग्राम पंचायतें, ग्रामों में उपलब्ध डाक्टर, शिक्षक, इंजीनियरों, रिटायर्ड सैनिक व पुलिस कर्मियों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। वहीं राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों से आपसी तालमेल व समन्वय का होना आवश्यक है जो कि विभिन्न वैज्ञानिक सूचनाओं, राहत उपकरणों, संचार उपकरणों से भली-भाँति परिचित हो।

भारत जैसे विकासशील देश में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं (भूस्खलन, बाढ़, तूफान, सूखा) तथा मानवजनित आपदाओं (सड़क, रेल, वायु दुर्घटनाओं, रासायनिक गैसों के रिसाव से उत्पन्न आपदाएँ आदि) से उत्पन्न समस्याओं का प्रबन्धन विकसित देशों की तुलना में भिन्न हैं, क्योंकि भारत की भौगोलिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं तथा देश विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के अन्तर्गत आता है।

एक अनुमान के अनुसार आज भी भारत में 57 प्रतिशत भूमि भूकम्प जनित आपदाओं, 68 प्रतिशत भूमि सूखा जनित आपदाओं, 12 प्रतिशत भूमि बाढ़ ग्रस्त आपदाओं, 8 प्रतिशत क्षेत्र चक्रवाती तूफानों से ग्रसित क्षेत्रों में आता है। साथ ही भारत के कई शहर या क्षेत्र औद्योगिकरण के कारण रासायनिक व औद्योगिक आपदाओं तथा मानव जनित आपदाओं में सम्मिलित हैं।

यद्यपि भारत में विभिन्न प्राकृतिक व मानव जनित आपदाओं के प्रबन्धन में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिसका उत्तम उदाहरण कृषि क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जहाँ आजादी से पूर्व भारत में सूखा पड़ना एक विकराल प्राकृतिक आपदा के रूप में जानी जाती थी। सन् 1769 से 1770 के बीच बंगाल में सूखे के समय अत्यधिक जनसंख्या सूखे के कारण मर गयी थी। इसी प्रकार आजादी के बाद भी सूखा कृषि क्षेत्र की एक गम्भीर समस्या थी, जिसमें हजारों लोग भूख के कारण काल के ग्रास बन जाते थे। सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के द्वारा सूखाग्रस्त क्षेत्रों का न्यूनीकरण किया गया। साथ ही सन् 1960 के दशक में कृषि क्षेत्र में स्वगमित विकास हेतु चलायी गयी योजनाओं में हरित क्रान्ति प्रमुख थी। जिससे न केवल कृषि के लिए संरचनात्मक विधाओं का विकास किया गया, वहीं दूसरी ओर खाद्य सामग्री के भण्डारण का वितरण की उचित व्यवस्था के कारण सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं में कमी के साथ भुखमरी से होने वाली जन हानि को न्यूनतम किया जा सका।

इसी प्रकार तटीय चक्रवातों के समय मानवजनित उपग्रहों के माध्यम से पूर्व चेतावनी का दिया जाना सम्मिलित है। भारत में एक ओर आपदाओं के प्रबन्धन में वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता ली जाती है, परन्तु स्थानीय स्तर पर आज भी प्रबन्धन में अनेक समस्याएँ हैं। जैसे कि लोगों को इन आपदाओं के प्रति जागरूक करना, जापान जैसे भूकम्प प्रभावित क्षेत्र में लोगों की सहायता से इससे होने वाले नुकसान को न्यूनतम किया जा जाता है। वहाँ घरों को भूकम्परोधी बनाना, भूकम्प के समय लोगों द्वारा अपनाये जाने वाले तरीकों से धन-जन की हानि को कम किया जा सकता है, परन्तु भारत में आज भी भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों से इन बातों की अवहेलना की जाती है। जिसके परिणामस्वरूप भूकम्प के समय मकानों के गिरने से अत्यधिक धन-जन की हानि होती है। इसी प्रकार का उदाहरण हाल में देश के पूर्वीतटीय भागों में आई सुनामी के कहर से स्पष्ट है। वहाँ कोई पूर्व चेतावनी प्रणाली न होने तथा लोगों को सुनामी के बारे में जानकारी न होने के कारण अपार धन-जन की हानि हो गयी।

भारत में प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा प्रतिवर्ष हजारों लोगों की मृत्यु हो जाती है (लगभग 3600 लोग), करोड़ों हैक्टेयर कृषि भूमि (1.42 मिलियन हैक्टेयर) और लाखों घर समाप्त हो जाते हैं।

ए0 पटवर्धन के द्वारा भारत में आपदा प्रबन्धन के सन्दर्भ में किये गये अध्ययन के आधार पर सबसे अधिक हानि तूफानों, बाढ़, भूकम्प व अत्यधिक तापमान द्वार होती है।

आपदा प्रबन्धन के लिए भारत सरकार के महत्वपूर्ण केन्द्रीय मंत्रालय व विभाग इस प्रकार हैं-

आपदाएँ	**केन्द्रीय मंत्रालय और विभाग**
प्राकृतिक आपदाएँ	कृषि
हवाई आपदाएँ	नागर विमानन
रेलवे दुर्घटनाएँ	रेलवे मंत्रालय
रासायनिक दुर्घटनाएँ	पर्यावरण मंत्रालय
शारीरिक आपदाएँ	स्वास्थ्य एवं पर्यावरण मंत्रालय
नागरिक दुर्घटनाएँ (महामारी, नैक्सलाइट हमले, आतंकवादी घटनाएँ)	गृह मंत्रालय
नाभिकीय दुर्घटनाएँ	परमाणु ऊर्जा मंत्रालय

ये समस्त संस्थान भारत में निरन्तर आपदाओं के न्यूनीकरण व प्रबन्धन के लिए कार्यरत हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राकृतिक जनित आपदा है-
   क. भूस्खलन ख. बम विस्फोट ग. रासायनिक गैसों का उत्सर्जन घ. उपरोक्त सभी
2. भूकम्प से क्षति है-
   क. प्राकृतिक आपदा ख. मानव जनित आपदा ग. दोनों नहीं घ. कोई नहीं
3. चैरनेबल परमाणु रिएक्टर दुर्घटना कौन सी आपदा थी?
   क. वायुमण्डलीय आपदा ख. जैविक आपदा ग. नाभिकीय आपदा घ. कोई नहीं
4. मानव जनित आपदा है-
   क. भूकम्प ख. ज्वालामुखी ग. सुनामी घ. रेल दुर्घटना
5. टैरनेडो अधिकांशतः यूरोप के मध्य भाग में आते हैं। सत्य/असत्य
6. सुनामी समुद्र में भूकम्प के फलस्वरूप उठी विध्वंशक तरंगों को हते हैं। सत्य/असत्य
7. ऊष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का असर भारत, बांग्लादेश आदि देशों में सर्वाधिक धन-जन की हानि करता है। सत्य/असत्य
8. ज्वालामुखी विस्फोट से निकलने वाले लावा और धूल से भी अपार धन-जन की हानि होती है। सत्य/असत्य

3.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह स्पष्ट हो गया है कि प्राकृतिक व मानवजनित आकस्मिक व विध्वंशकारी घटनाएँ जिनके द्वारा अपार धन-जन की हानि होती है, को आपदा कहते हैं। आपदाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदाएँ- जिसमें (भूकम्प, ज्वालामुखी, भूस्खलन, बाढ़, सूखा, चक्रवात) आदि सम्मिलित हैं, प्राकृतिक शक्तियों का हाथ होता है, जिसके बारे में वैज्ञानिक रूप से आज भी हमारे पास पूर्वानुमान के बहुत कम साधन हैं। यह कब? कहाँ? कैसे? आएगा, इसका पूर्वानुमान लगाना अभी भी अपनी प्राथमिक अवस्था में है।

यद्यपि विकसित देशों में वैज्ञानिक उपकरणों व तकनीकी के सहारे इन आपदाओं से होने वाले धन-जन की क्षति को कम किया जा सकता है, किन्तु विकासशील या अल्पविकसित देशों में वैज्ञानिक संसाधनों का अभाव होने के कारण ये प्राकृतिक आपदाएँ अपार धन-जन की हानि पहुँचाती हैं। इनके अतिरिक्त मानव जनित आपदाएँ हैं, जिनमें रासायनिक, जैविक, नाभीकीय, युद्व, आतंकी घटनाओं आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

मानव जनित आपदाओं के प्रबन्धन में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पहुओं का भौगोलिक परिस्थितियों से उचित सामंजस्य बनाकर इन आपदाओं से होने वाले दुष्परिणामों को कम किया जा सकता है तथा उचित प्रबन्धन के लिए आपदाग्रस्त क्षेत्रों का वैज्ञानिक शोध के द्वारा विस्तृत अध्ययन, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग पूर्व चेतावनी प्रणाली का विकास व कुशल व शिक्षित राहत कर्मियों के संगठनों को तैयार करना, तुरन्त राहत व चिकित्सा सामग्रियों को पहुँचाना स्थानीय लोगों को उपरोक्त प्रकार प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देना, सुरक्षा सम्बन्धी उपयों की जानकारी देना, विभिन्न प्रकार की आपदाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर ठोस कार्य योजना बनाना तथा उनको दृढ़ता से लागू करना तथा स्थानीय, राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर पर आपदा से पूर्व व बाद के प्रबन्धन के लिए दीर्घकालिक व अल्पकालिक नीतियाँ बनाना आदि आपदा प्रबन्ध के मुख्य कार्य हैं।

3.8 शब्दावली

आपदा- प्राकृतिक व मानव जनित घटनाओं से होने वाली धन-जन की हानि।

प्रबन्धन- किसी भी समस्या से निजात पाने के लिये कई सम्भावित विकल्पों से एक विकल्प चुनना।

पार्थिव- पृथ्वी से ऊपर।

प्लेट विर्वतनिक- ऐसा सिद्धान्त जो पृथ्वी के बाहरी भाग को विभिन्न प्लेटों में बाँटने में उसके द्वारा महाद्वीप के निर्माण, ज्वालामुखी व भूकम्प आदि की व्याख्या करताहै।

टैरनेडो- कम दाब वाले क्षेत्रों में हवाओं या गोलाकार घूमते हुए उत्पन्न हिंसक तूफानों को टैरनेडो कहते हैं।

एस्टोराइड- मंगल व बृहस्पति ग्रहों के बीच घूमते हुए उल्का पिण्ड।

मैट्रोइट्स- जब ब्रह्माण्ड में घूमते उल्का पिण्ड पृथ्वी के वातावरण में भी नष्ट नहीं होते, बल्कि पृथ्वी से टकराते हैं।

भूस्खलन- चट्टानों का पानी आदि के कारण तेजी से नीचे गिरना, जो कि वर्षाकाल में घटित होता है।

हिमस्खलन- पर्वतीय क्षेत्रों के बड़े हिम या बर्फ के क्षेत्र में अपने ढाल पर गिरना, जिसके कारण अपार धन-जन की हानि होती है।

रिचर्टर स्केल- भू-वैज्ञानिक चार्ल्स एफ0 रिचर्टर द्वारा सन् 1935 में भूकम्प से निकली ऊर्जा के मापन की इकाई।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, **2.** क, **3.** ग, **4.** घ, **5.** असत्य, **6.** सत्य, **7.** सत्य, **8.** सत्य

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Patwardhan A., 2007: Disaster management in India paper IIT Bombay, pp. 1-15
2. सिंह सविन्द्र, 1991: पर्यावरण भूगोल 'प्रयाग पुस्तक भवन', इलाहाबाद, पेज 1-516

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. in Aerospace surncy and natural disaster pvdnctin, ITC journal, 1989.

2. O. Riordan T, 1971: Perspectives on Resource Management, Pion Londa.

3. Hashizume. M, 1989: The present state of Natural hazard identification sna international cooperation.

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आपदा प्रबन्धन किसे कहते हैं? इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिये।

2. प्राकृतिक आपदाएँ किसे कहते हैं? उनसे होने वाले प्रतिकूल प्रभावों का वर्णन कीजिये।

3. मानव जनित आपदा का क्या तात्पर्य है? किन-किन कारणों से होती है? तथा इसके रोकथाम के उपायों की चर्चा कीजिये।

4. आपदा प्रबन्धन में समाहित घटकों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई- 4 राज्य लोक सेवा आयोग

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 सिविल सेवा का अर्थ
4.3 लोक सेवा आयोग का महत्व
4.4 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के कारक
    4.4.1 अखिल भारतीय सेवाएं
    4.4.2 राज्य सेवाएं
4.5 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण
    4.5.1 प्रथम प्रणाली के आधार पर वर्गीकरण
    4.5.2 राजपत्रित एवं अराजपत्रित वर्गीकरण
4.6 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती
4.7 आयोग के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान
4.8 उतराखण्ड लोक सेवा आयोग
4.9 आयोग के कार्य
4.10 आयोग की स्वतंत्रता
4.11 सारांश
4.12 शब्दावली
4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.16 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

राज्य लोक सेवा का अभिप्राय उन सेवाओं या पदों से है, जिनकी भर्ती व सेवा की शर्तें राज्य विधान सभा के अधिनियम के द्वारा या जब तक ऐसी विधि पारित न हो , राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार नियमित की जाती है। (अनुच्छेद- 309)

राज्य सरकारें अपने-अपने राज्यों में लोक सेवकों की भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा करती है। संविधान के अनुच्छेद- 315 के अन्तर्गत राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना करने की व्यवस्था है।

इस इकाई में सिविल सेवाओं की प्रकृति का वर्णन किया गया है। सेवाओं का वर्गीकरण और भर्ती के अनेक पहलुओं की विवेचना की गयी है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य स्तर पर सिविल सेवकों के कारकों तथा राज्य सेवाओं के मानदंड तथा वर्गीकरण को समझेंगे।

- उत्तराखण्ड के लोक सेवा आयोग के गठन के बारे में जान पायेंगे।
- राज्य सेवाओं की भर्ती प्रणाली को समझेंगे।
- आयोग की भूमिका तथा इसके महत्व को समझ पायेंगे।

4.2 सिविल सेवा का अर्थ

राज्य सेवाओं का अर्थ, राज्य स्तर की सिविल सेवाओं से है। सिविल सेवा सरकार द्वारा सेवा में नियुक्त असैनिक कर्मचारियों को कहते हैं। सिविल सेवा एक कैरियर सेवा है। अर्ध-सरकारी निकायों के कर्मचारी तथा अधिकारी सिविल सेवा का अंग नहीं होते। सिविल सेवा का एक आवश्यक अंग या उपादान योग्यता प्रणाली की अवधारणा है। योग्यता प्रणाली का अर्थ है, सिविल सेवा के पदों के लिये खुली प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा जाँची गयी योग्यता के आधार पर चयन। राज्य लोक सेवा में ग्रामीण व नगरीय सेवाएं सम्मिलित नहीं है। राज्य शासन इस प्रकार राज्य तथा अधीनस्थ सेवाओं के प्रथम नियुक्ति, नियुक्ति प्रणाली, संख्या और पदस्वरूप तथा सेवा शर्तों के सम्बन्ध में नियम निर्माण की शक्ति का उपयोग करते हैं। इन सेवाओं से सम्बन्धित मामलों में यह अंतिम सत्ता है। राज्य के बाहर किसी भी अन्य सत्ता के समक्ष कोई अपील या प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में राज्य सेवाएं उन सेवाओं को मिला कर बनती हैं, जिन्हें राज्य शासन समय-समय पर अधिकृत गजट में अधिसूचित करता है। एक स्वतंत्र एजेंसी द्वारा योग्यता के प्रमाणित प्रतियोगिता के आधार पर लोक सेवकों का चयन किया जाता है। राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली एजेंसी को राज्य लोक सेवा आयोग कहते हैं।

4.3 लोक सेवा आयोग का महत्व

यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि सिविल सेवा के लिये भर्ती किसी भी पक्षपात के बिना हो। इसी से योग्यता प्रणाली में विश्वास उत्पन्न हो सकता है। भर्ती मे निष्ठा तथा निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिये बहुत से उपाय योग्यता प्रणाली के प्रादुर्भाव के बाद विकसित किये गये हैं। कार्यपालक शाखा को सिविल सेवा के लिये भर्ती करने की शक्ति से वंचित रखा गया है और इस उद्देश्य के लिये एक अलग एजेंसी की स्थापना की गयी है। यह विभाग से अलग संस्था है, अर्थात एक आयोग है। जो सरकार की आम मशीनरी से बाहर रह कर कार्य करती है। इस संस्था को संवैधानिक हैसियत प्रदान की गयी है। ये ध्यान देने की बात है कि आयोग केवल भर्ती करने वाली एजेंसी है, यह नियुक्ति करने की एजेंसी नहीं है। नियुक्ति करने का अधिकार सरकार का है। आयोग एक सलाहकारी संस्था है। इसके निर्णय मानने के लिये सरकार बाध्य नहीं है।

संवैधानिक स्तर पर भी आयोग को महत्व दिया गया है। इसका लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि आयोग बिना भय या पक्षपात के कार्य करें। यह तब सम्भव होगा जबकि इसका गठन, भूमिका तथा प्रत्यायोजन इसके सदस्यों के विशेषाधिकार, सदस्यों की नियुक्ति तथा पद से हटाने का तरीका आदि का वर्णन संविधान में दिया जाये। क्योंकि ऐसा करने से सरकार की कार्यपालक शाखा को इन मामलों में स्वविवेक व स्वेच्छा का प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं होगा तथा आयोग इससे प्रभावित हुए बिना कार्य कर सकता है। इस प्रकार संविधानिक स्तर प्रदान करने का अर्थ इसकी सत्ता तथा स्वतंत्रता पर किसी सम्भावित अतिक्रमण के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करना है।

4.4 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के कारक

यहाँ यह जानना अति आवश्यक है कि राज्य स्तर पर एक के स्थान पर दो भिन्न-भिन्न सेवाएं काम करती हैं। इनमें से एक राज्य स्तर पर विविध क्षेत्रों की गतिविधियों को चलाने के लिये, सिविल सेवा के सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा

भर्ती की गयी सेवाएं हैं, इन्हें राज्य सिविल सेवाएं या केवल राज्य सेवाएं कहा जाता है। राज्य में कार्यरत दूसरी सिविल सेवाएं हैं- अखिल भारतीय सेवाएं।

4.4.1 अखिल भारतीय सेवाएं

अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती केन्द्र सरकार द्वारा 'संघ लोक सेवा आयोग' के माध्यम से की जाती है। भर्ती के पश्चात प्रत्येक अधिकारी को एक निश्चित राज्य वर्ग (काडर) दिया जाता है। उस प्रदत्त राज्य से ही वह सम्बद्ध अधिकारी केन्द्र सरकार में आता है। जिस व्यवस्था के तहत यह स्थान परिवर्तित होता है, उसे सावधिक प्रणाली(Term system) कहते हैं। अधिकारी का राज्य तथा केन्द्र के बीच तबादला उसकी सेवा के पहले बीस वर्षों के दौरान होता है। अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र तथा सम्बद्ध राज्य का संयुक्त नियंत्रण होता है। अखिल भारतीय सेवाएं जिला, राज्य तथा उसके ऊपर उच्च पदों के लिये कार्मिक प्रदान करती है। इस प्रकार ज़िलाधिकारी, क्षेत्रीय आयुक्त, राजस्व बोर्ड के सदस्य, सरकार के सचिव, मुख्य सचिव व पुलिस विभाग के पुलिस अधीक्षक और उसके उपर के सभी पद अखिल भारतीय सेवाओं से भरे जाते हैं।

4.4.2 राज्य सेवाएं

राज्य में लोक सेवकों की भर्ती राज्य सरकार द्वारा अपने 'राज्य लोक सेवा आयोग' या अन्य एजेंसी के माध्यम से की जाती है। इन सेवाओं के सदस्य मुख्यतः राज्यों में सेवा के लिये होते हैं। केवल कुछ अवसरों पर ही कुछ राज्य सेवाओं के कुछ सदस्य केन्द्र या किसी संस्था के द्वारा बुलाये जाते हैं। तकनीकी तथा गैर-तकनीकी विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप गठित सेवाएं राज्यों के पास हैं। राज्य की निम्नलिखित सेवाएं हो सकती हैं- प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा, न्यायिक सेवा, वन सेवा, कृषि सेवा, शिक्षा सेवा, स्वास्थ्य सेवा, मत्स्य सेवा, इंजिनियरिंग सेवा, लेखा सेवा, बिक्री कर सेवा, मद्य निषेध एवं उत्पाद सेवा, सहकारी सेवा।

4.5 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण के लिये दोहरी प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रणाली में सेवाएं, प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में वर्गीकृत की जाती हैं। इस वर्गीकरण का आधार है- स्वीकार्य वेतनमान, निष्पादित कार्य के दायित्व की मात्रा व अपेक्षित तदनुरूपी योग्यताएं। सभी राज्य सेवाओं का गठन विभागवार किया जाता है। दूसरी प्रणाली के अन्तर्गत सेवाओं तथा पदों का वर्गीकरण राजपत्रित व अराजपत्रित के बीच किया जाता है।

4.5.1 प्रथम प्रणाली के आधार पर वर्गीकरण

प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में राज्य सेवाओं का अधिकारी वर्ग आता है। जबकि तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में क्रमशः लिपिक तथा शारीरिक कार्य करने वाले कर्मचारी शामिल हैं।

1. **प्रथम श्रेणी की सेवाएं-** प्रथम श्रेणी की सेवाओं में सामान्यतः समयबद्ध वेतनमान वाले पद तथा सामान्य समयबद्ध वेतनमान से अधिक वेतन वाले कुछ पद शामिल होते हैं। साधारणतया प्रत्येक विभागीय सेवा में प्रथम श्रेणी संवर्ग होता है। द्वितीय श्रेणी सेवाओं से पदोन्नति द्वारा तथा राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा सीधे भर्ती द्वारा होती है। सामान्यतः यह लिखित तथा व्यक्तित्व परीक्षण द्वारा होती है।
2. **द्वितीय श्रेणी की सेवाएं-** द्वितीय श्रेणी की सेवाएं अधीनस्थ सिविल सेवाएं होती हैं। जैसे- अधीनस्थ पुलिस सेवा आदि। द्वितीय श्रेणी की सेवाएं प्रथम श्रेणी की सेवाओं की तुलना में स्तर तथा उत्तरदायित्व की दृष्टि से नीचे होती हैं। फिर भी ये इतनी महत्वपूर्ण हैं कि इनकी नियुक्ति का अधिकार राज्य सरकार के हाथों में होना आवश्यक है। द्वितीय श्रेणी सेवाओं में सबसे महत्वपूर्ण अधीनस्थ सिविल सेवा है। यहाँ तक

कि कुछ राज्यों में इस सेवा के लिये अन्य द्वितीय श्रेणी की सेवाओं की अपेक्षा उँचे वेतनमान निर्धारित किये गये हैं।

3. **तृतीय श्रेणी की सेवाएं-** तृतीय श्रेणी की सेवाओं को दो भागों में बाँटा गया है-
    - अधीनस्थ कार्यपालक- जैसे नायब तहसीलदार, पुलिस सब इंस्पैक्टर, उप शिक्षा निरीक्षक आदि।
    - लिपिकीय सेवाएं- इन पदों के लिये भर्ती आंशिक रूप से लोक सेवा आयोग द्वारा तथा आंशिक रूप से विभागीय या जिला अध्यक्षों के स्तर पर की जाती है।

4.5.2 राजपत्रित एवं अराजपत्रित वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण की दूसरी प्रणाली उन्हें राजपत्रित तथा अराजपत्रित श्रेणी में रखती है। एक राजपत्रित सरकारी कर्मचारी वो होता है जिसकी नियुक्ति, तबादला, पदोन्नति, सेवा निवृति आदि की घोषणा राज्यपाल के आदेश द्वारा जारी की गयी अधिसूचना के रूप में सरकारी राजपत्र में की जाती है। राजपत्रित अधिकारी एक कार्यालय का प्रभारी होता है। राजपत्रित पदों में अखिल भारतीय सेवाएं तथा प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की राज्य सेवाएं शामिल होती हैं। अराजपत्रित पदों में तृतीय व चतुर्थ श्रेणी की सेवाएं होती हैं।

4.6 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती

भर्ती में तीन प्रथक किन्तु अन्तरसम्बद्ध प्रक्रियाएं शामिल हैं-

1. पदों के लिये आवेदन करने वाले योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करना।
2. खुली प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर, कार्य के लिये उम्मीदवारों का चयन।
3. चयन किये गये उम्मीदवारों को उचित स्थान पर नियुक्त करना, जिसमें सम्बद्ध लोगों को अधिकृत अधिकारी द्वारा नियुक्ति-पत्र जारी करना।

पहली दो प्रक्रियांए एक स्वतंत्र भर्ती करने वाली एजेंसी द्वारा की जाती है। राज्यों में यह कार्य सिविल सेवा आयोग द्वारा किये जाते हैं। तीसरी प्रक्रिया राज्य सरकार का दायित्व है। इसलिये यह याद रखना अति आवश्यक है कि लोक सेवा आयोग केवल भर्ती करने वाली सलाहकारी एजेंसी है, नियुक्त करने का अधिकार सरकार के पास है। भर्ती की विशेषताओं में, राज्य सिविल सेवा के लिये भर्ती की आयु न्यूनतम 21 वर्ष से अधिकतम 35 वर्ष निर्धारित की गयी है। अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़ी जाति को संवैधानिक आधार पर आयु सीमा में छूट दी जाती है। भर्ती लोक सेवा आयोग की खुली प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर की जाती है। इससे उच्च पदों पर राज्य सेवकों की भर्ती पदोन्नति द्वारा की जाती है। भरे जाने वाले रिक्त पदों को हर वर्ष विज्ञापित किया जाता है तथा सारे देश से उम्मीदवारों से आवेदन पत्र आमंत्रित किये जाते हैं। न्यूनतम योग्यता किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि है। चयन के लिये प्रतियोगिता परीक्षा के तीन चरण हैं- प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा व साक्षात्कार। लिखित परीक्षा के कुछ निश्चित अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को व्यक्तित्व परीक्षण के लिये बुलाया जाता है। जो लगभग आधे घन्टे की अवधि वाला साक्षात्कार होता है। सफल उम्मीदवार की सूची योग्यतानुसार तैयार कर सरकार के पास आवश्यक कार्यवाही अर्थात नियुक्ति पत्र जारी करने के लिये भेज दी जाती है। नियुक्त करने का अधिकार केवल सरकार को होता है।

4.7 आयोग के सम्बन्ध में संविधानिक प्रावधान

राज्य लोक सेवा से सम्बन्धित संविधान में निम्न प्रावधानों दिये गये हैं-

1. संविधान के अनुच्छेद- 315 में लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान है। इसके अनुसार संघ तथा प्रत्येक राज्य के लिये एक लोक सेवा आयोग होगा।
2. अनुच्छेद- 316 ऐसे आयोगों के गठन का निर्धारण करता है। यह अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के तरीके तथा उनके पद की शर्तों का भी वर्णन करता है। इसके अन्तर्गत अध्यक्ष व सदस्यों के कार्यकाल का वर्णन भी किया गया है। अनुच्छेद- 317 उन कारणों व प्रक्रियाओं का उल्लेख करता है, जिसके द्वारा इस कार्यकाल से पहले सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं।
3. आयोग की स्वतंत्रता को देखते हुए अनुच्छेद- 318, 319 तथा 322 में ऐसे उपायों का उल्लेख है, जिनसे आयोग की सुरक्षा तथा मजबूती हो सके।
4. आयोग के कार्यों एवं दायित्वों के क्षेत्र तथा भर्ती करने वाली एजेंसी में उनकी भूमिका का दायरा क्या हो? इन प्रश्नों का उत्तर अनुच्छेद- 320, 321 व 323 में दिया गया है।
5. अनुच्छेद- 323 में यह व्यवस्था है कि आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करेगा, जिनमें अन्य बातों के साथ सरकार द्वारा सलाह को स्वीकृति दिये जाने वाले मामलों का उल्लेख किया जायेगा तथा सलाह न मानने के कारण का भी उल्लेख किया जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि इन रिपोर्टों को उपयुक्त विधान मंडलों के समक्ष पेश किया जायेगा।

आयोग का गठन के लिए राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। संविधान में कहा गया है कि इसका निर्णय राज्यपाल द्वारा किया जायेगा। आयोग के कम से कम आधे सदस्य वे होंगे, जिन्हें केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन कार्य करने का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव हो। सदस्यों का कार्यकाल 06 वर्ष या 60 वर्ष तक की आयु तक होता है। नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। परन्तु सदस्यों को केवल राष्ट्रपति द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है, न कि राज्यपाल द्वारा। सदस्यों की सेवा-शर्तें राज्यपाल द्वारा निर्धारित होती हैं, परन्तु महत्वपूर्ण बात ये है कि संविधान में यह व्यवस्था है कि ये उनके अहित में नहीं बदली जा सकती। इन सब में वह सुरक्षा निहित है, जिनसे आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित होती है।

4.8 उतराखण्ड लोक सेवा आयोग

उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम- 2000 के द्वारा उत्तराखण्ड राज्य दिनांक 9 नवम्बर 2000 को भारतीय गणतंत्र का 27वाँ राज्य बना। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 315 के अन्तर्गत उत्तराखण्ड राज्य के गठन के साथ ही उत्तराखण्ड शासन के शासनादेश संख्या- 247/एक-कार्मिक-2001, दिनांक 14 मार्च 2001 द्वारा जनपद हरिद्वार में उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग की स्थापना हुई। आयोग के प्रथम अध्यक्ष श्री एन0पी0 नवानी, सेवानिवृत आई0ए0एस0 की नियुक्ति के साथ ही आयोग 15 मई 2001 को अस्तित्व में आया। शासनादेश संख्या 1455/कार्मिक-2/2001, दिनांक 29 अगस्त 2001 द्वारा आयोग के संरचनात्मक ढ़ाँचे का गठन हुआ। आयोग के माननीय अध्यक्ष व माननीय सदस्यों के पदों सहित अधिकारियों एवं कर्मचारियों के 73 पदों की स्वीकृति शासन द्वारा प्रदान की गयी। वर्तमान में माननीयअध्यक्ष, माननीय सदस्य (04 पद) परीक्षा नियंत्रक, संयुक्त सचिव(विधि)-01पद, संयुक्त सचिव प्रशासन एक पद सहित अधिकारियों/कर्मचारियों तथा चतुर्थ श्रेणी के कुल 143 पद स्वीकृत हैं।

4.9 आयोग के कार्य

भर्ती करने वाली एजेंसी के रूप में राज्य लोक सेवा आयोग का मुख्य कार्य सिविल सेवाओं की नियुक्ति के लिये परीक्षाओं का आयोजन करना। परन्तु इसके अलावा कुछ और कर्तव्य होते हैं जिन्हें लोक सेवा आयोग द्वारा पूरा किया जाना होता है। जैसे-

1. राज्य सरकार को ऐसे विषय में सलाह देना, जो राज्यपाल द्वारा इसके पास भेजा गया हो।
2. ऐसे अतिरिक्त कार्य सम्पन्न कराना जो विधानमण्डल के एक्ट द्वारा प्रदान किये गये हों। इसका सम्बन्ध राज्य सिविल सेवा या स्थानीय प्राधिकरण की सेवाओं या अन्य निगमित सेवाओं से हो सकता है।
3. कार्य की वार्षिक रिपोर्ट राज्यपाल को पेश करना।

इसके अलावा संविधान में यह भी व्यवस्था है कि निम्न मामलों में आयोग से विचार-विमर्श लिया जायेगा-

- सिविल सेवाओं व सार्वजनिक या सिविल पदों की भर्ती के तरीकों से सम्बन्धित सभी मामले।
- सिविल सेवाओं तथा पदों की नियुक्ति के लिये एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला तथा पदोन्नति करने के लिये तथा ऐसी नियुक्तियां/पदोन्नतियों तथा तबादलों के लिये उम्मीदवारों की उपयुक्तता के सन्दर्भ में अपनाये जाने वाले सिद्धान्त।
- राज्य सिविल सेवा में कार्यरत किसी व्यक्ति को प्रभावित करने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही।
- राज्य सिविल सेवा में कार्यरत या सेवानिवृत व्यक्ति या उसकी ओर से कोई व्यक्ति यदि यह मांग या दावा करें कि उसे उस व्यय की पूरी राशि का भुगतान राज्य की संचित निधि से किया जाये जो उसने अपने विरूद्ध दायर मुकदमें में कानूनी कार्यवाही करने में खर्च की, क्योंकि वह मुकदमा उसके द्वारा सम्पादित कार्यों के विरूद्ध किया गया था तो इस पर भी लोक सेवा आयोग की सलाह की जायेगी।
- राज्य सरकार के अधीन सेवा के दौरान लगी क्षति के संवर्धन में पेंशन दिये जाने के दावे।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि लोक सेवा आयोग एक भर्ती एजेंसी के रूप में कार्य करता है। परन्तु यह कुछ अर्ध-विधायी तथा अर्ध-न्यायिक कार्य भी सम्पन्न करता है।

4.10 आयोग की स्वतंत्रता

एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि आयोग को स्वतंत्र रूप से कार्य करने का प्रावधान संविधान में दिया गया है। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार-

1. सत्ता के सम्भावित दुरूपयोग को रोकने के लिये भर्ती तथा पद से हटाने की शक्ति दो अलग-अलग अधिकारियों को सौंपी गयी है। अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु उसे पद से हटाने का अधिकार राष्ट्रपति के पास है।
2. संविधान में उल्लिखित कारणों तथा प्रक्रिया द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है।
3. सदस्यों का वेतन तथा उसकी सेवा शर्तें, उसकी नियुक्ति के पश्चात उसके अहित में नहीं बदली जा सकती।
4. आयोग के सभी खर्च राज्य की संचित निधि से होते हैं।
5. आयोग के सदस्य तथा अध्यक्षों के ऊपर सरकार के अधीन भविष्य में पद ग्रहण करने के सम्बन्ध के कुछ प्रतिबंध लगाये गये हैं। सेवा निवृति के पश्चात वे केन्द्र या राज्य आयोग से बाहर सरकारी पद ग्रहण नहीं कर सकते।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना करने की व्यवस्था भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में वर्णित है?
2. राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली सबसे बड़ी एजेंसी को क्या कहते हैं?
3. आयोग के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष होता है?

4. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग का गठन कब किया गया?
5. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष कौन हैं?

4.11 सारांश

राज्य स्तर पर अनेक प्रकार के नियमितता तथा विकास सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन ने यह आवश्यक बना दिया है कि एक बड़ी तथा सुगठित सिविल सेवा उनके द्वारा बनायी जाये, जो योग्यता प्रणाली पर आधारित हो। सरकार की ये सेवाएं कैरियर सेवाएं हैं, जिनकी भर्ती एक खुली प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है। खुली प्रतियोगिता परीक्षओं की अवधारणा का जन्म उन्नीसवीं सदी के दौरान हुआ। इन सेवाओं को बनाते समय इस बात पर विचार किया गया कि सिविल सेवाओं की भर्ती, वेतन, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण तकनीकी एवं व्यवसायिक कारणों पर आधारित हो न कि राजनीतिक विचारों पर। राज्य लोक सेवा आयोग को राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रखा गया। आयोग सरकारी व्यवस्था को निरंतरता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि आयोग निष्पक्ष होकर सिविल सेवकों को चुनता है और सरकार को नियुक्ति हेतु भेज देता है। लोक सेवा आयोग किसी भी राज्य के लिये नियुक्ति की सबसे महत्वपूर्ण एजेंसी है।

4.12 शब्दावली

प्रत्यायोजन- कार्यों और शक्तियों को अधीनस्थ को अपनी सुविधा के अनुसार सौंपना, अतिक्रमण- नियम या कानून का उल्लंघन, नियन्त्रक- शासकीय अधिकारी

4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.अनुच्छेद- 315, **2.** लोक सेवा आयोग, **3.** 06 वर्ष, **4.** 14 मार्च 2001, **5.** श्री एन0 पी0 नवानी

4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी0 डी0बसु- भारत का संविधान।
2. सुभाष कश्यप- हमारी संसद।
3. सुभाष कश्यप- हमारा संविधान।

4.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी व अवस्थी- भारतीय प्रशासन।
2. शर्मा एवं सडाना- लोक प्रशासन- सिद्धान्त व व्यवहार।
3. डॉ0 सविता मोहन व हरीश यादव- उत्तरांचल समग्र अध्ययन।

4.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग की विस्तृत वर्णन करें।
2. राज्य स्तर की सेवाओं के वर्गीकरण का आधार क्या है?
3. आयोग का गठन कैसे होता है? तथा वह कार्य कैसे करता है?
4. आयोग के सम्बन्ध में संविधानिक प्रावधानों पर एक लेख लिखिये।

इकाई- 5 भर्ती, प्रशिक्षण(ए0टी0आई0 के सन्दर्भ में) और पदोन्नति

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 भर्ती
    5.2.1 भर्ती के अनिवार्य तत्व
    5.2.2 भर्ती की रीतियाँ
    5.2.3 प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती
    5.2.4 चयन तथा प्रमाणीकरण
    5.2.5 भारत की लोक सेवाओं में भर्ती
5.3 प्रशिक्षण
    5.3.1 प्रशिक्षण के उद्देश्य
5.4 उत्तराखण्ड का प्रशिक्षण संस्थान- 'उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी'(ए0टी0आई0)का इतिहास
    5.4.1 उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी द्वारा आयोजित प्रशिक्षण की रूपरेखा
    5.4.2 अकादमी के प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम
5.5 पदोन्नति
    5.5.1 भारतीय लोक सेवा में पदोन्नति की नीतियों का इतिहास
    5.5.2 पदोन्नति के सिद्धान्त
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति कार्मिक प्रशासन के महत्वपूर्ण तत्वों में एक हैं। कार्मिक प्रबन्ध या कार्मिक प्रशासन या मानवीय संसाधन प्रबन्ध किसी भी संगठन के कार्यकर्ताओं के प्रबन्ध को कहते हैं। कार्मिक प्रबन्ध की परिभाषा करते हुए एम0 जे0 जूशियन ने कहा कि ''यह प्रबन्ध का वह क्षेत्र है जो कर्मचारियों की भर्ती, विकास तथा उपयोग करने के कार्यों के नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा नियंत्रण से सम्बन्धित है।'' कार्मिक प्रबन्ध को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। योग्य कर्मचारी किसी भी संगठन की रीढ़ होते हैं।

पदोन्नति का अर्थ, पद और स्तर में वृद्धि से है। पद और स्तर में वृद्धि के साथ पारिश्रमिक में भी वृद्धि होती है। इन सभी विषयों पर हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन किसे कहते हैं, इसे जान पायेंगे।
- भर्ती क्या है तथा भर्ती की रीतियाँ क्या हैं और भर्ती के गुण क्या हैं, इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- प्रशिक्षण के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- उत्तराखण्ड के प्रशिक्षण केन्द्र ए0 टी0 आई0 और उसकी प्रशिक्षण की प्रणाली को समझ पायेंगे।
- पदोन्नति और पदोन्नति के सिद्धान्त को समझ पायेंगे।

5.2 भर्ती

सामान्य अर्थों में भर्ती शब्द को नियुक्ति का समानार्थक माना जाता है परन्तु यह सही नहीं हैं। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में भर्ती का अर्थ है, किसी पद के लिये समुचित तथा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करना है। भर्ती और चयन की प्रक्रिया ही शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है। जैसा कि स्टाल का कथन है कि ''यह सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढाँचे की आधारशिला है।''

5.2.1 भर्ती के अनिवार्य तत्व

भर्ती के अनिवार्य तत्वों को निचे दिये गये बिन्दुओं के माध्यम से जानने का प्रयास करते हैं-

1. भर्ती प्रक्रिया मानव शक्ति योजना के साथ जुड़ी हुई और समन्वित होनी चाहिये।
2. भर्ती प्रक्रिया को समूचे कार्मिक कार्यों का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिये।
3. भर्ती प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिये जो भर्ती योजनाओं को बनाते और लागू करते समय कार्मिक भागीदारी को प्रोत्साहन दे।
4. भर्ती प्रक्रिया ध्यानपूर्वक नियोजित, संगठित, निर्देशित और नियंत्रित होनी चाहिये।
5. लोगों के विश्वास को बनाने के लिए भर्ती प्रक्रिया में उचित और निष्पक्ष मापदण्ड होना चाहिये।
6. भर्ती प्रक्रिया में ऐसी कार्यविधियों और तरीकों का प्रयोग होना चाहिये, जिससे आवेदन पत्रों को शीघ्रता से निपटाया जा सके।
7. भर्ती करने वाली एजेन्सी को समूची प्रकिया में सकारात्मक रुचि लेनी चाहिये।

5.2.2 भर्ती की रीतियाँ

भर्ती की सबसे अधिक प्रचलित रीति यह है कि समाचार-पत्रों में रिक्त स्थान शीर्षक से विज्ञापन अथवा राजपत्रों में विज्ञप्तियाँ प्रकाशित कराई जाये। इस पद्धति के विषय में प्रायः यह कहा जाता है कि भले ही यह पद्धति अधिक संख्या में आवेदन-पत्रों को आकर्षित करने में सफल हो जाये, तथापि यह आवश्यक नहीं है कि इस पद्धति के द्वारा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवार आकर्षित हो सकेंगे। उसके लिये यह आवश्यक है कि भर्ती करने वाले अधिकारी अधिक सक्रियतापूर्वक कार्य करें। सही प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करने की चेष्टा को सचेष्ट भर्ती कहते हैं तथा बिना प्रयास के की जाने वाली भर्ती को सामान्य भर्ती अथवा निष्क्रिय भर्ती कहलाती है। सचेष्ट भर्ती के विविध साधन हैं, जैसे- पोस्टर, परिचय-पत्र, समाचार-पत्र अथवा पत्र-पत्रिकाओं में सचित्र विज्ञापन एवं सिनेमा

द्वारा विज्ञापन। ये पद्धतियाँ तब प्रयोग में लायी जाती हैं जब बड़े पैमाने पर भर्ती करनी हो, जैसे- युद्धकाल में प्रतिरक्षा सेनाओं के लिए।

भर्ती की दूसरी पद्वति यह है कि सीधे उन्हीं स्रोतों को खटखटाया जाये जहाँ से उम्मीदवार उपलब्ध हो सकें। उच्च पदों की भर्ती के लिये प्रायः विशेष योग्यता अथवा अनुभव की आवश्यकता होती है। अतः उनके मामले में भर्ती करने वाले अधिकारी सम्बन्धित क्षेत्र में ऐसे लोगों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं जो अपनी कुशलता के लिये प्रसिद्ध हों तथा उनके साथ शर्तों के बारे में चर्चा कर सकते हैं। शर्तें तय हो जाने के बाद उनसे औपचारिक रुप में आवेदन-पत्र माँगे जा सकते हैं।

5.2.3 प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती

उच्चतर पदों की भर्ती करने के लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वे पद उन समस्त उम्मीदवारों के लिये खुले रखे जायें जो उनके लिये आवेदन करना चाहते हैं अथवा उन व्यक्तियों तक ही सीमित रखें जाये जो पहले से ही सेवा कर रहें हैं। यदि पहला मार्ग अपनाया जाता है तो उसे प्रत्यक्ष भर्ती की रीति कहा जायेगा और दूसरे मार्ग को पदोन्नति द्वारा भर्ती की रीति। यह स्पष्ट है कि निम्नतम पदों पर भर्ती प्रत्यक्ष रीति से ही किया जाना चाहिये, क्योंकि उसके नीचे कोई ऐसा कार्मिक स्तर नहीं होता जिससे पदोन्नति करके भर्ती की जा सके। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि सचिवों एवं विभागाध्यक्षों जैसे उच्चतम पदों अथवा जिलाधीश जैसे महत्वपूर्ण पदों के लिये बाहर से नये और अनुभवहीन व्यक्तियों का भर्ती किया जाना ठीक नहीं होगा, भले ही वे कितने भी योग्य क्यों न हो।

1. **प्रत्यक्ष भर्ती के गुण-** प्रत्यक्ष भर्ती का पहला गुण यह है कि यह लोकतंत्र के इस सिद्धान्त के अनुरुप है कि समस्त योग्य व्यक्तियों का सेवापद प्राप्त करने का समान अवसर होना चाहिये। दूसरा, प्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा अधिक विस्तृत स्रोतों तक पहुँचा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरुप अधिक योग्य और प्रतिभाशाली लोगों तक पहुँचा जा सकता है। तीसरा, प्रत्यक्ष भर्ती के परिणामस्वरुप सेवाओं में नया रक्त निरन्तर प्रवेश कर सकता है तथा सेवाओं पर पुराने एवं रुढ़िवादी लोगों को आधिपत्य जमाने से रोकती है। साथ ही निम्नतर पदों का अनुभव उच्चतर पदों के लिये लाभदायक होने की अपेक्षा हानिकारक अधिक सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष भर्ती के अभाव में पदोन्नति के द्वारा उच्चतर पद जीवन में बहुत देर से प्राप्त होता है। पाँचवा, प्रत्यक्ष भर्ती के अभाव में वे युवा व्यक्ति जो विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके आते हैं, शासकीय सेवाओं के प्रति तनिक भी आकर्षित नहीं होते हैं। परिणामस्वरुप शासकीय सेवाओं को हीन व्यक्तिओं से ही संतोष करना पड़ेगा।
2. **प्रत्यक्ष भर्ती के दोष-** प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली का पहला दोष यह है कि इसके द्वारा सेवाओं में ऐसे लोग प्रवेश पा जाते हैं जिन्हें पिछला कोई शासकीय अनुभव नहीं होता, जिसके परिणामस्वरुप उन्हें किसी भी महत्वपूर्ण पद के दायित्व सौंपने से पहले दीर्घकाल तक प्रशिक्षण देना पड़ता है। दूसरे, प्रत्यक्ष भर्ती के कारण निम्नतर श्रेणियों में अच्छा काम करने का उत्साह कम हो जाता है, क्योंकि उस श्रेणी के कर्मचारी यह सोचने लगते है कि चाहे उनका काम कितना भी अच्छा क्यों न हो, उन्हें उच्चतर पद प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलेगा। तीसरे, प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली में एक दोष यह भी है कम आयु के लोग अधिक आयु और अधिक अनुभव के लोगों के ऊपर नियुक्त कर दिये जाते हैं, जिससे उनके भीतर असंतोष उत्पन्न होता है और उनकी कार्य क्षमता घट जाती है।

5.2.4 चयन तथा प्रमाणीकरण

उम्मीदवारों के चयन के लिये किये जाने वाले परीक्षण दो प्रकार के होते हैं- प्रतियोगिता परीक्षण और प्रतियोगितारहित परीक्षण। प्रतियोगिता परीक्षण का आयोजन दोहरा होता है, पहला तो यह पता लगाना कि कौन उम्मीदवार ऐसे हैं जिनमें न्यूनतम निर्धारित योग्यता है, दूसरा यह पता लगाना कि योग्यता की दृष्टि से उनकी तुलनात्मक स्थिति क्या है। योग्यता परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि प्रतियोगिता परीक्षणों का दोहरा मानदण्ड अपनाया जाये। लोकसेवाओं के लिये केवल उन लोगों का चयन नहीं किया जाना चाहिये जो न्यूनतम योग्यता की शर्तों को पूरा करते है वरन् उनमें श्रेष्ठतम का चयन होना चाहिये। उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता और उपयुक्तता की जाँच करने के लिये चार प्रकार के परीक्षण प्रचलित हैं- लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा (साक्षात्कार), कार्यकुशलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन तथा शिक्षा एवं अनुभव के मूल्यांकन द्वारा तुलनात्मक चयन। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के बौद्धिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी होते हैं।

5.2.5 भारत की लोक सेवाओं में भर्ती

भारत में वरिष्ठ लोक सेवाओं के लिए गठित शाही आयोग, जिसे ''ली आयोग'' भी कहते हैं, ने सन् 1924 में यह मत व्यक्त किया था कि ''जो कुछ प्रजातांत्रिक संस्थाएं विद्यमान हैं, उनके अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि यदि दक्ष लोक सेवा की व्यवस्था की जाती है तो यह आवश्यक है कि जहाँ तक सम्भव हो राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रभावों से उसकी रक्षा हो और उसे स्थायित्व तथा सुरक्षा प्रदान की जाये। जो निष्पक्ष तथा कुशल साधनों से उसके सफलतापूर्वक कार्य करने के लिये आवश्यक होते हैं तथा जिन साधनों द्वारा सरकारें चाहे वो किसी भी प्रकार की हों, अपनी नीतियों को लागू कर सकें।'' आज प्रत्येक प्रजातांत्रिक देश ने लूट-प्रणाली से बचने के लिये लोक सेवाओं की भर्ती का कार्य एक स्वतंत्र निकाय बना कर लोक सेवा आयोग को सौंपा है। भारत में सन् 1919 के 'भारत शासन अधिनियम' द्वारा सर्वप्रथम एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी थी, यद्यपि यह आयोग सन् 1926 में स्थापित किया गया। सन् 1935 के 'भारत शासन अधिनियम' ने केवल संघ लोक सेवा आयोग की ही व्यवस्था नहीं की बल्कि प्रान्तों के लिये लोक सेवा आयोग की भी व्यवस्था की। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुच्छेद- 115 में यह व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है।

भारत की लोक सेवाओं का वर्गीकरण ग्रुप ए, ग्रुप बी और ग्रुप सी में किया गया है। ग्रुप ए में कई संगठित सेवाऐं सम्मिलित की गयी हैं, जैसे- भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय लेखा परीक्षण, तथा लेखाकरण सेवा आदि। अखिल भारतीय सेवाओं तथा ग्रुप ए व ग्रुप बी की कुछ सेवाओं में भर्ती सिविल सर्विसेज परीक्षा द्वारा की जाती है। कुछ केन्द्रीय सेवाओं, जैसे- भारतीय आर्थिक या सांख्यिक सेवा, कनिष्ठ वेतनक्रमों के अतिरिक्त विशिष्ट उच्चतर वेतनक्रमों में पार्श्व भर्ती की भी व्यवस्था है। केन्द्रीय सेवाओं के आधीन ग्रुप सी सेवाओं और पदों, जैसे- क्लर्क, स्टैनोग्राफर, एकाउंटेन्ट आदि की भर्ती के लिये स्टाफ चयन आयोग (एस0एस0सी0) की स्थापना की गयी है जो इस उद्देश्य से परीक्षाओं का प्रबन्ध करता है।

5.3 प्रशिक्षण

लोक सेवकों का शिक्षण तथा प्रशिक्षण लोक सेवा की कुशलता के लिये नितान्त आवश्यक है। भर्ती की नीति के कारण भी प्रशिक्षण का महत्व बढ़ता जा रहा है। भर्ती की नीति में सामान्य योग्यताओं को प्राथमिकता दी जाती है और शासन के प्रसार के साथ ही इसके कार्य अत्यन्त प्राविधिक, विशिष्ट तथा जटिल होते जा रहे हैं। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य यह है कि सरकारी कृत्यों के लिये लोक कर्मचारी को भली प्रकार से तैयार किया जाये।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण का अर्थ वह प्रत्यक्ष प्रयत्न है जिसके द्वारा कर्मचारी अपने कौशल, अपनी क्षमता एवं अपनी प्रतिभा को बढ़ाता है। व्यापक अर्थ में प्रशिक्षण का तात्पर्य एक विशेष ऐसा शिक्षण समझा जाता है जिसके द्वारा इष्ट कौशल की लगातार वृद्धि होती रहती है। प्रशिक्षण शिक्षा से भिन्न होता है, प्रशिक्षण का क्षेत्र और उद्देश्य संकुचित होते हैं। प्रशिक्षण में व्यक्ति की प्रवृति एवं उच्च विचार को विशेष मोड़ दिया जाता है। लोक प्रशासन के प्रसंग में प्रशिक्षण और शिक्षा के बीच जो व्यवहारिक भेद किया जाता है वह यह है कि प्रशिक्षण किसी विशेष व्यवसाय के क्षेत्र में विशेष कौशल बढ़ाता है, परन्तु शिक्षा बुद्धि और मन का विस्तार करती है। शिक्षा सर्वतोन्मुखी और सैद्धान्तिक होती है तो प्रशिक्षण अपेक्षाकृत व्यवहारिक और विशेष-धन्धी।

5.3.1 प्रशिक्षण के उद्देश्य

किसी भी संगठन की सफलता का प्रमुख कारण है- सौंपे गये विशेष कार्य को पूरा करने में व्यक्ति की प्रावधिक कुशलता तथा किसी निकाय के सदस्यों के सामूहिक उत्साह एवं दृष्टिकोण से प्राप्त कुछ अस्पष्ट सी कुशलता। प्रशिक्षण इन दोनों तत्वों को ध्यान में रख कर दिया जाता है। प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. प्रशिक्षण का प्रयत्न ऐसे लोक सेवकों का निर्माण करना होना चाहिए जो कार्य में निश्चित ही सुस्पष्टता ला सकें।
2. लोक सेवकों को उन कार्यों के अनुकूल बनाना, जिनके पालन का दायित्व उनको सौंपा गया है। लोक सेवा के लिये यह आवश्यक है कि वह नवीन आवश्यकताओं के अनुसार अपने दृष्टिकोण व तरीके में परिर्वतन लायें।
3. आवश्यकता इस बात की भी है कि नौकरशाही की मशीन के चक्कर में पड़कर लोक सेवकों का कहीं यंत्रीकरण न हो जाये।
4. जहाँ तक व्यावसायिक प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, केवल उसी कृत्य का प्रशिक्षण देना पर्याप्त नहीं है, जो उसके समक्ष हैं एवं उसे तत्काल करने हैं। प्रशिक्षण केवल इसलिये नहीं होना चाहिए कि कोई व्यक्ति अपने विद्यमान कार्य को अधिक कुशलता के साथ कर सके, बल्कि उसका उद्देश्य उसे उन दायित्वों के योग्य बनाना होना चाहिए और उसकी उच्च कार्यक्षमता का विकास किया जाना चाहिए।
5. मानव समस्या को ध्यान में रखते हुए तथा प्रशिक्षण योजनाओं को सफल बनाने के उद्देश्य से कर्मचारी वर्ग के मनोबल पर समुचित ध्यान देना चाहिए।

5.4 उत्तराखण्ड का प्रशिक्षण संस्थान- उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी(ए0टी0आई) का इतिहास

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी परिसर का बहुत रोचक एवं गौरवपूर्ण इतिहास है, सन् 1951 में ''अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल'' के नाम से इलाहाबाद में स्थापित इस संस्थान को जब सन् 1971 में नैनीताल के शान्त एवं सुरम्य वातावरण में लाने का निर्णय लिया गया तब आर्डवैल (उच्चरथ नगर-High Town) कैम्प परिसर को इस संस्थान की स्थापना के लिए चुना गया आर्डवैल कैम्प में निर्मित बैरेक्स में द्वितीय विश्वयुद्व के समय रॉयल एयरफोर्स के अधिकारियों के अस्थायी आवास थे तथा आर्डवैल बैरेक्स में अमेरिकन अधिकारी भी रहते थे। आर्डवैल कोठी जो कि आज निदेशक आवास है, स्वतंत्रता से पूर्व कुमाऊँ कमिश्नर का आवास हुआ करती थी। एवर्सल हाउस जजों का अतिथि गृह एवं मुख्य सचिव आवास है, जो पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त द्वारा सन् 1957 में ले लिया गया था, तब उसमें श्री हाफिज मोहम्मद इब्राहिम वित्त मंत्री, संयुक्त प्रान्त रहते थे बाद में इसे शासकीय कार्यों के लिए ले लिया गया आर्डवैल प्रांगण में बैरेक्स और क्वार्टरों के साथ एक हॉल का निर्माण किया गया था जो अंग्रेज

फौजियों को अंग्रेजी चलचित्र दिखाने के लिये काम में आता था, साथ ही आवश्यकता पड़ने पर डोरमेटरी के रूप में भी इसका प्रयोग होता था। दिनांक 15 मई 1947 से दिनांक 6 जून, 1947 तक संयुक्त प्रान्त लेजिस्लेटिव असेम्बली की 16 बैठकें आर्डवैल हॉल में आयोजित हुई थीं। उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी परिसर में स्थित आर्डवैल हॉल स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व आयोजित संयुक्त प्रान्त लेजिस्लेटिव असेम्बली बैठकों के पदाधिकारी के रूप में अध्यक्ष माननीय पुरूषोत्तम दास टण्डन, उपाध्यक्ष श्री नफीसुल हसन, सचिव श्री कैलाश चन्द्र भटनागर इत्यादि कई अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा भाग लिया गया था।

विगत कुछ दशकों में किये गये नीतिगत परिवर्तनों, विशेषकर अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, संचार साधनों व सूचना तकनीकि क्षेत्र में हुई क्रान्ति इत्यादि ने शासन एवं इसके विभिन्न अभिकरणों की भूमिका को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। निःसन्देह अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाओं का भी राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक हितों तथा नीतियों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है। इन परिवर्तनों एवं प्रभावों के परिणामस्वरूप शासन तंत्र से जन अपेक्षाओं में वृद्वि हुई है, शासन तंत्र से इन बदलती हुई परिस्थितियों, विशेषकर बढ़ती हुई जन अपेक्षाओं के सम्बन्ध में अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि शासन तंत्र अर्थात् विभिन्न विभागों और इनमें सेवारत कार्मिकों को विभिन्न परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के समाधान करने एवं नये लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सक्षम बनाने हेतु, उनके ज्ञान व कौशल में निरन्तर अभिवृद्वि हेतु प्रयास किये जाऐं। यह एक अविवादास्पद तथ्य है कि प्रशिक्षण सेवारत कार्मिकों को कार्य निष्पादन हेतु कुशल, प्रभावी एवं समक्ष बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह भी दृष्टिगोचर हुआ कि प्रभावी रूप से संचरित एवं संचालित प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा संगठन एवं सेवारत कार्मिकों के मनोबल को ऊँचा उठाने एवं उनके दृष्टिकोण में अपेक्षित परिवर्तन में सहायक होता है। अतः जन-सामान्य की अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु शासन के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है, क्योंकि प्रदेश का समग्र विकास सेवारत कार्मिकों की कार्य कुशलता, कार्यदक्षता व योग्यता एवं शासन की प्राथमिकताओं के अनुरूप विकास एवं कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर जन अपेक्षाओं के अनुरूप उनके कार्य व्यवहार पर प्रायः निर्भर करता है।

प्रदेश शासन को मानव संसाधन विकास व प्रशिक्षण सम्बन्धी विषय पर नीतिगत परामर्श देने, राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रयासों को सुदृढ करने एवं राज्य के अधिकारियों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करने के उद्देश्य के साथ उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल को स्थापित व विकसित किया गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विगत वर्षों की उपलब्धियों के परिणमस्वरूप इस अकादमी ने प्रदेश व सम्पूर्ण देश में क्षमता विकास के एक अग्रणी संस्था के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की है । उत्तराखण्ड में, उत्तराखण्ड प्रशासनिक अकादमी, नैनीताल को एक शीर्ष प्रशिक्षण संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। तद्नुसार अकादमी, शासन तंत्र एवं अकादमी के उद्देश्यों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं सम्बन्धित गतिविधियों का आयोजन प्रतिवर्ष सफलतापूर्वक करती आ रही है।

अकादमी की स्थापना वर्ष 1951 में भारतीय प्रशासनिक सेवा (उत्तर प्रदेश संवर्ग) तथा राज्य सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) के अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिये इलाहाबाद में 'अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल' (ओ0टी0एस0) के रूप में की गयी। वर्ष 1958 में इस स्कूल के प्रादेशिक न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिये भी व्यावसायिक प्रशिक्षण आरम्भ किया गया। वर्ष 1961 तक स्कूल में प्रान्तीय सिविल सेवा अधिकारियों के लिये नियमित रूप से प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। परन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण वर्ष 1961 में स्कूल की गतिविधियाँ तात्कालिक रूप से स्थगित कर दी गयी।

वर्ष 1971 में पुनः अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल को नैनीताल के वर्तमान परिसर में स्थापित कर दिया गया। नैनीताल में आयुक्त स्तर के अधिकारी को इस स्कूल का पूर्णकालिक प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। वर्ष 1974 में स्कूल के नाम को परिवर्तित कर 'प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान' कर दिया गया। वर्ष 1976 से संस्थान के विभिन्न पदों के पदनाम भी बदल दिये गये। संस्थान में अब निदेशक, संयुक्त निदेशक, उप-निदेशक तथा सहायक निदेशक नियुक्त किये गये। प्रशिक्षण के बदलते स्वरूप एवं संस्थान की बढ़ती हुई गतिविधियों को देखते हुए, वर्ष 1988 में इसे प्रदेश का शीर्षस्थ प्रशिक्षण संस्थान घोषित किया गया तथा संस्थान की बढ़ती गतिविधियों एवं बदलते लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इसका नाम परिवर्तित करते हुए इसे 'उत्तर प्रदेश प्रशासन अकादमी' कर दिया गया।

5.4.1 उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी द्वारा आयोजित प्रशिक्षण की रूपरेखा

9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड के रूप में नये राज्य का गठन हुआ। राज्य गठन के पश्चात यह 'उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी' के रूप में स्थापित हो गया। वर्तमान में इसके नाम में परिवर्त करते हुए यह अकादमी अब डॉ0 रघुनन्दन सिंह टोलिया उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी के नाम से है। अब यह उत्तराखण्ड राज्य की शीर्षस्थ प्रशिक्षण संस्था के रूप में अपने दायित्वों को पूर्ण कर रही है। वर्तमान में अकादमी द्वारा उत्तराखण्ड राज्य के अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। अकादमी वर्तमान में सम्मिलित राज्य सेवा के अधिकारियों हेतु आधारभूत/सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्सों के अतिरिक्त प्रादेशिक सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा), भारतीय प्रशासनिक सेवा (उत्तराखण्ड संवर्ग), भारतीय वन सेवा (उत्तराखण्ड संवर्ग) के अधिकारियों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन कर रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा भारत सरकार व प्रदेश शासन के विभिन्न विभागों के अधिकारियों के लिये सेवाकालीन तथा विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

उत्तराखण्ड राज्य द्वारा उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयनित सभी अधिकारियों के लिये तीन सप्ताह का सेवा प्रवेश प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है। सेवा प्रवेश प्रशिक्षण का उद्देश्य नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य की चुनौतियों तथा अवसरों के बारे में नव-नियुक्त अधिकारियों को अद्यतन सूचना से अवगत कराना तथा उनमें प्रबन्धकीय कौशल का विकास करना है। जिससे वे अपने-अपने क्षेत्रों में गुणात्मक सेवाएँ प्रदान कर सकें, तथा उनमें उत्तराखण्ड राज्य की सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में उचित समझ विकसित हो सके। अकादमी द्वारा राज्य के अधिकारियों के क्षमता विकास हेतु अनेकों प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है जिससे वह सुयोग्य, व्यावसायिक एवं प्रतिबद्धतापूर्ण लोक सेवक के रूप में राज्य के विकास में सहयोग दे सकें। अकादमी द्वारा कई ऐसे विभागों के लिए भी क्षमता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, जिनके पास संस्थागत प्रशिक्षण आयोजित करने की सुविधाएँ नहीं है या प्रशिक्षण नहीं है या प्रशिक्षकों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण सीमित संसाधनों से प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं। अकादमी द्वारा प्रशिक्षण प्रभाग, कार्मिक एवं प्रशिक्षण कौशल विकसित करने में सहायक कार्यक्रम जैसे डायरेक्ट ट्रेनिंग (डीओटी), इवैल्यूएशन ऑफ ट्रेनिंग (ईओटी) एवं ट्रेनिंग टैक्नीक्स इत्यादि कार्यक्रमों का आयोजन प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है। अकादमी को ओवरसीज डेवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन, ब्रिटिश सरकार तथा प्रशिक्षण प्रभाग, कार्मिक व प्रशिक्षण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के सौजन्य से भारत में चलाई जा रही प्रशिक्षक विकास योजना के अन्तर्गत देश के पांच प्रमुख क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों में से एक प्रमुख केन्द्र के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इसके अन्तर्गत अकादमी देश व प्रदेश के विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत प्रशिक्षण संकाय को प्रत्यक्ष प्रशिक्षण की कला, प्रशिक्षण डिजाइन, प्रशिक्षण आवश्यकता विश्लेषण, प्रशिक्षण प्रबन्धन जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करती है।

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में सूचना का अधिकार अधिनियम- 2005 के क्रियान्वयन की दशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। आन्तरिक स्तर पर विभागीय मैनुअल, कर्मचारियों के दायित्व का विवरण विस्तृत रूप से प्रकाशित किया जाता है, साथ ही अपर निदेशक को लोक सूचना अधिकारी तथा निदेशक को अपीलीय अधिकारी के रूप में अधिसूचित किया गया है। अकादमी में सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन हेतु एक-एक अलग प्रकोष्ठ उप-निदेशक के अधीन गठित किया गया है। प्रशासन में सुधार हेतु सूचना तक पहुँच को एक मुख्य क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया है। सूचना तक पहुँच को एक मुख्य विकासात्मक मुद्दे के रूप में मान्यता दी गयी है, क्योंकि यह प्रशासन को अधिक उत्तरदायी तथा सहभागी बनाने के साथ शक्ति के निरंकुश प्रयोग पर रोक लगाकर अधिक पारदर्शिता को सुनिश्चित करता है। सूचना का अधिकार जनता को उनके अधिकारों की अनुभूति कराता है। अकादमी में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आलावा यू0एन0डी0पी0 के सहयोग से सूचना के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत विस्तृत कार्य योजना तैयार की गई है।

आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का गठन कृषि मंत्रालय भारत सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश प्रशासन अकादमी, नैनीताल में राज्य स्तर की इकाई के रूप में वर्ष 1995 में किया गया था, 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड के रूप में नए राज्य का गठन हुआ। राज्य के अधिकतर क्षेत्र भूकम्पीय जोन में होने के कारण से शासन स्तर से आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र की स्थापना की गई थी। इसलिए यह केन्द्र भी देहरादून में आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र में ही सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु उद्देश्यों में अन्तर होने की वजह से जुलाई 2006 में आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ पुनः उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में स्थापित किया गया। आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का कार्य मुख्यतः दैवी आपदाओं के सम्बन्ध में सूचनाओं का संकलन, डॉक्युमेन्टेशन, आपदा प्रबन्ध के सम्बन्ध में एक्शन प्लान का निर्धारण, पूर्व तैयारी, जागरूकता तथा प्रशिक्षण, कन्सलटेन्सी, शोध तथा क्षमता विकास इत्यादि के कार्य संचालित होते हैं।

5.4.2 अकादमी के प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम

अकादमी के अन्तर्गत संचालित किये जाने वाले कार्यक्रमों में सम्मिलित राज्य सेवा के अधिकारियों के आधारभूत, राज्य संवर्ग के आई0ए0एस0, आई0एफ0एस0 और पी0सी0एस0 अधिकारियों के व्यवसायिक तथा पदोन्नत उप-जिलाधिकारियों के कार्यकारी विकास तथा राज्य सिविल सेवा के अधिकारियों के सेवा कालीन प्रशिक्षण सम्मिलित हैं। साथ ही प्रदेश के विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों के ज्ञान व क्षमता के विकास हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम भी समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। अकादमी द्वारा आयोजित किये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निम्न रूप से देखा जा सकता है।

1. **व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स-** अखिल भारतीय सेवा के प्रशिक्षार्थी हेतु आयोजित किये जाने वाले व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स का मुख्य लक्ष्य प्रशिक्षार्थी अधिकारियों को सम्बन्धित कार्यक्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिए उनकी क्षमता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करना है। प्रादेशिक सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) एवं प्रादेशिक वित्त सेवा के अधिकारियों हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्सो का आयोजन किया गया। छठा आई0ए0एस0 व्यवसायिक कोर्स की अवधि 5 सप्ताह की रही, जिसमें दो आई0ए0एस0 अधिकारियों ने प्रतिभाग किया। दूसरा व्यवसायिक कोर्स प्रादेशिक वित्त सेवा के अधिकारियों का हुआ, जो कि 12 सप्ताह चला, जिसमें 9 अधिकारियों ने भाग लिया। तीसरा व्यवसायिक कोर्स प्रादेशिक सिविल सेवा कार्यकारी सेवा के अधिकारियों का हुआ, जो कि 12 सप्ताह चला, जिसमें 13 अधिकारियों ने प्रतिभाग किया।
2. **आधारभूत प्रशिक्षण कोर्स-** आधारभूत प्रशिक्षण कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य प्रशिक्षार्थी अधिकारियों को

प्रदेश तथा सम्बन्धित कार्यक्षेत्रों की समस्याओं के लिए उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करना होता है। प्रादेशिक सिविल सेवा वर्ष 2004 बैच के अधिकारियों हेतु छठा आधारभूत कार्यक्रम बारह सप्ताह चला और इसमें 39 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

3. **सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स-** उत्तराखण्ड शासन द्वारा दिनांक 17 जनवरी, 2003 को प्रेषित पत्र (संख्याः1833 एक-1-2003) द्वारा राज्य के समस्त विभागों एवं अकादमी, नैनीताल को यह सूचित किया गया था कि उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग से चयनित समस्त अभ्यर्थियों को (राज्य स्तरीय सेवा से भिन्न) कार्यभार ग्रहण कराने से पूर्व अनिवार्य रुप से आधारभूत/सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स अकादमी नैनीताल में प्राप्त करना होगा, जिससे कि नवचयनित अधिकारियों को उनकी सेवाओं से सम्बन्धित कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से परिचित कराया जा सके।

   उत्तराखण्ड शासन द्वारा नवचयनित अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से दिया गया उपरोक्त आदेश/पहल इसलिए भी महत्तवपूर्ण है कि नये राज्य उत्तराखण्ड के नवम्बर, 2000 में सृजित होने के पश्चात इस नवसृजित राज्य में नियुक्त लोक सेवकों से जन अपेक्षाओं के सन्दर्भ में अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जा रही है।

   उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल द्वारा 2009-2010 में उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित अधिकारियों हेतु, संदर्भित वर्ष में निम्नलिखित सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स को आयोजित किया गया। व्यापार कर अधिकारी श्रेणी- 2 के अधिकारियों हेतु बीसवाँ सेवा प्रवेश प्रशिक्षण तीन सप्ताह चला, जिसमें 51 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

4. **राष्ट्रीय बैनर डिवीजन-** राष्ट्रीय बैनर डिवीजन के अन्तर्गत अकादमी द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भारत सरकार के सहयोग से किया जाता है। राष्ट्रीय बैनर डिवीजन के अन्तर्गत अकादमी द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के लिए निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये- कम्युनिटी पार्टीसिपेशन एण्ड मोबिलाइजेशन, आई0ए0एस0 अधिकारियों का प्रशिक्षण। तथा ग्यारहवां आई0पी0एस0-वर्टीकल इन्टरैक्शन कोर्स।
5. **प्रादेशिक बैनर डिवीजन-** भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के प्रशिक्षण प्रभाग की सहायता से राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए चिन्हित आवश्यकता आधारित विभिन्न विषयों पर आयोजित किए जाने वाले एक सप्ताह एवं तीन दिवसीय कार्यक्रम के आयोजन का दायित्व इस डिवीजन को सौंपा गया है।
6. **सूचना का अधिकार अधिनियम-** उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में, सूचना का अधिकार अधिनियम- 2005 के क्रियान्वयन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं। आन्तरिक स्तर पर विभागीय मैनुअल, कर्मचारियों के दायित्व का विवरण विस्तृत रुप से प्रकाशित किया गया है।
7. **आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ-** 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड के रुप में नये राज्य का गठन हुआ। राज्य के अधिकतर क्षेत्र भूकम्पीय जोन होने की वजह से शासन स्तर से आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र की स्थापना की गयी थी, इसलिए यह केन्द्र भी देहरादून में आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र में ही सम्मिलित कर लिया गया। उद्देश्यों में अन्तर होने की वजह से अप्रैल, 2006 में अकादमी की बोर्ड ऑफ गवर्नर्स की मीटिंग में निर्णय लिया गया कि इसे पुनः अकादमी में स्थापित किया जाये।

5.5 पदोन्नति

पदोन्नति का शब्दकोष में अर्थ है- पद, स्तर तथा सम्मान में वृद्धि करना या आगे बढ़ाना। वस्तुतः पदोन्नति से अर्थ- पद और स्तर में वृद्धि से है। लोक सेवा व्यावसायिक सेवा है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति सरकारी नौकरी करता है वह जीविकोपार्जन के रुप में लोक सेवा को स्वीकार करता है और सम्पूर्ण जीवन उसमें व्यतीत करता है। अर्थात समय के साथ-साथ संगठन और वरिष्ठता क्रम में सार्वजनिक कर्मचारी अपने कार्य के आधार पर आगे बढ़ता रहता है। अतः पदोन्नति लोक सेवा का एक अभिन्न अंग है।

5.5.1 भारतीय लोक सेवा में पदोन्नति की नीतियों का इतिहास

सन् 1669 में ईष्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा अपने कर्मचारियों के सम्बन्ध में वरिष्ठता का नियम लागू किया गया था और इसी के साथ भारत में लोक सेवाओं का सूत्रपात हुआ। सन् 1771 में कम्पनी ने व्यापारिक दायित्व के साथ-साथ प्रशासकीय दायित्व भी वहन किया और वरिष्ठता के सिद्धान्त का संशोधन करते हुए योग्यता को मान्यता दी। इस सम्बन्ध में निदेशक मण्डल ने आदेश दिया कि 'हमारी यह इच्छा है कि हमारे कर्मचारी उच्च पदों पर सेवा में प्राथमिकता क्रम अर्थात् वरिष्ठता के आधार पदोन्नत किये जायें। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल वरिष्ठता के आधार पर ही ऐसे पद पाने के अधिकारी हों, अपितु उन्हें निभ्रान्त रुप से सच्चरित्र और पर्याप्त योग्यता -सम्पन्न होना चाहिये'। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर पदोन्नति की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम लोक सभा की अनुमान समिति ने प्रशासकीय, वित्तीय और अन्य सुधारों की जाँच के दौरान पदोन्नति की रीतियों का विरोध करते हुए निम्नलिखित रीति का सुझाव दिया था, जो सभी आधुनिक देशों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में मान्य हैं-

1. पदोन्नति का आधार योग्यता होना चाहिये, न कि सेवारत व्यक्तियों की वरीयता।
2. कर्मचारियों की पदोन्नति के सम्बन्ध में केवल उन्हीं व्यक्तियों को अधिकार देना चाहिये, जिन्होंने कुछ समय तक उनके कार्य और आचरण की जाँच की हो।
3. कम से कम एक त्रिस्तरीय कमेटी की सिफारिश के आधार पर ही, जिसका एक सदस्य उस व्यक्ति के कार्य से सुपरिचित हो, पदोन्नति की जानी चाहिये और ऐसे मामले में, जहाँ किसी वरिष्ठ अधिकारी के हित की उपेक्षा की गयी हो, समिति को लिखित रुप में वरिष्ठता की उपेक्षा करने के कारणों पर प्रकाश डालना चाहिये।
4. किसी कर्मचारी को पदोन्नत किये जाने के अवसर पर उसके गोपनीय प्रतिवेदन की जाँच की जानी चाहिये और यह देखा जाना चाहिये कि उसे गलतियों के सम्बन्ध में कितनी बार चेतावनी दी गयी और इन चेतावनियों के बावजूद यदि उसके आचरण में कोई सुधार नहीं हुआ तो क्या उसे पुनः चेतावनी दी गयी?
5. यदि किसी व्यक्ति या कर्मचारी को यह चेतावनी नहीं दी गयी है तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि उसके सम्बन्ध में दिये गये प्रतिवेदन इतने अच्छे हैं कि उसे पदोन्नत कर देना चाहिये।

5.5.2 पदोन्नति के सिद्धान्त

पदोन्नति निम्नलिखित किसी एक सिद्धान्त पर आधारित होता है- 1. वरिष्ठता, 2. योग्यता तथा 3. वरिष्ठता तथा उपयुक्तता (या उपयुक्तता के अधीन वरिष्ठता)

लोक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता और/या योग्यता पर आधारित होती है। ऐसे पदों पर जिनके सम्बन्ध में चयन नहीं किया जाता तथा तृतीय श्रेणी के पदों पर उपयुक्त होने पर वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था है। जिन पदों के लिए प्रत्याशियों का चुनाव किया जाता है, विशेषकर प्रथम और द्वितीय श्रेणी में पदोन्नति योग्यता के

आधार की जाती है। जिन पदाधिकारियों की पदोन्नति पर विचार किया जाना है, उनकी संख्या सीमित होती है और पदोन्नत किये जाने वाले पदों की संख्या के तीन गुने से पांच गुने तक के अधिकारियों के कामों को वरिष्ठता क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। परम्परा के अनुसार पदोन्नति निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता के आधार पर, मध्य स्तर के पदों पर वरिष्ठता सहित योग्यता के आधार पर और उच्चस्तरीय पदों पर योग्यता के आधार पर की जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत शासन अधिनियम द्वारा सर्वप्रथम लोक सेवा आयोग की स्थापना कब की गयी?
2. लोक सेवाओं का वर्गीकरण कितने ग्रुपों में किया गया है?
3. उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी की स्थापना किस वर्ष हुयी?
4. सर्वप्रथम उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी का क्या नाम था?
5. प्रादेशिक न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण अकादमी ने किस वर्ष शुरु किया?
6. सूचना का अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन कब हुआ?
7. आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का गठन अकादमी में कब किया गया?
8. पदोन्नति के तीन सिद्धान्त कौन कौन से है?

5.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि प्रशासकीय संरचना में भर्ती और चयन, प्रशिक्षण व पदोन्नति की प्रक्रिया महत्वपूर्ण स्थान होता है। जहाँ भर्ती व चयन द्वारा लोक सेवाओं का स्तर व योग्यता निश्चित होती है, वहीं प्रशिक्षण लोक सेवकों को उनके कार्यों के लिये दक्ष व व्यावहारिक बनाने में सहायक होता है। लोक सेवकों और कर्मचारियों की सेवा को देखते हुए उनकी कार्य-प्रणाली व दक्षता के आधार पर उन्हें पदोन्नत किया जाता है, जिससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है और उनकी कार्यप्रणाली में तीव्रता आती है। भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति कर्मचारियों के केवल दक्षता व मनोबल ही नहीं बढ़ाते, वरन् उन्हें व्यवहार कुशल, मृदुभाषी व सहयोगी बनाते हैं। सांराशतः कहा जा सकता है कि भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढाँचें की आधारशिला है।

5.7 शब्दावली

समानार्थक- समान अर्थ वाले, सचेष्ट- ऊर्जावान, विज्ञप्ति- प्रेस नोट, पारदर्शिता- स्पष्ट, प्रतिबद्ध- सम्बद्ध

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1919, **2.** तीन, **3.** सन् 1951, **4.** अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल, **5.** सन् 1958, **6.** सन् 2005, **7.** सन् 1995, **8.** वरिष्ठता, योग्यता, वरिष्ठता तथा उपयुक्तता।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी0डी0 बसु- भारत का संविधान।
2. टी0सी0 भट्ट- उत्तराखण्ड , राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास।
3. वार्षिक प्रतिवेदन- उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी,नैनीताल (वर्ष 2008-09, वर्ष 2009-10)
4. प्रशिक्षण नीति- उत्तर प्रदेश राज्य प्रशिक्षण नीति 1999, कार्मिक विभाग, लखनऊ।

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी व माहेश्वरी- लोक प्रशासन।
2. शर्मा व सडाना- लोक प्रशासन: सिद्धान्त व व्यवहार।
3. डॉ0 एस0 सी0 सिंघल- समकालीन राजनीतिक मुद्दे।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भर्ती की परिभाषा देते हुए उसके अनिवार्य तत्वों को बताइये।
2. प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती के गुण-दोष लिखिये।
3. प्रशिक्षण किसे कहते हैं? प्रशिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।
4. उत्तराखण्ड प्रशासनिक अकादमी के इतिहास पर एक लेख लिखिये।

इकाई- 6 स्थानीय स्वशासन

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य
6.3 संविधान में संशोधन और स्थानीय स्वशासन
6.4 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता
6.5 स्थानीय स्वशासन और पंचायतें
6.6 स्थानीय स्वशासन और पंचायतों में आपसी सम्बन्ध
6.7 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा?
6.8 स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास में सम्बन्ध
6.9 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम
    6.9.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
    6.9.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
6.10 स्थानीय स्वशासन की विशेषताऐं और चुनौतियां
6.11 सारांश
6.12 शब्दावली
6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

स्थानीय स्वशासन लोगों की अपनी स्वयं की शासन व्यवस्था का नाम है। अर्थात् स्थानीय लोगों द्वारा मिलजुलकर स्थानीय समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानून के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में 'स्वशासन' गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी है।

यदि हम इतिहास को पलट कर देखें तो प्राचीन काल में भी स्थानीय स्वशासन विद्यमान था। सर्वप्रथम कुटुम्ब से कुनबे बने और कुनबों से समूह। ये समूह ही बाद में ग्राम कहलाये। इन समूहों की व्यवस्था प्रबन्धन के लिये लोगों ने कुछ नियम, कायदे-कानून बनाये। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना जाता था। ये नियम समूह अथवा गांव में शांति व्यवस्था बनाये रखने, सहभागिता से कार्य करने व गांव में किसी प्रकार की समस्या होने पर उसके समाधान करने तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव का सम्पूर्ण प्रबन्धन तथा व्यवस्था इन्हीं नियमों के अनुसार होती थी। इन्हें समूह के लोग स्वयं बनाते थे व उसका क्रियान्वयन भी वही लोग करते थे। कहने का तात्पर्य है कि स्थानीय स्वशासन में लोगों के पास वे सारे अधिकार हों, जिससे वे विकास की प्रक्रिया को अपनी जरूरत और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मनचाही दिशा दे सकें। वे स्वयं ही अपने लिये प्राथमिकता के आधार पर योजना बनायें और स्वयं ही उसका क्रियान्वयन भी करें। प्राकृतिक संसाधनों

जैसे जल, जंगल और जमीन पर भी उन्हीं का नियन्त्रण हो ताकि उसके संवर्द्धन और संरक्षण की चिन्ता भी वे स्वयं ही करें। स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के पीछे सदैव यही मूलधारणा रही है कि हमारे गांव, जो वर्षों से अपना शासन स्वयं चलाते रहे हैं, जिनकी अपनी एक न्याय व्यवस्था रही है, वे ही अपने विकास की दिशा तय करें। आज भी हमारे कई गांवों में परम्परागत रूप में स्थानीय स्वशासन की न्याय व्यवस्था विद्यमान है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय स्वशासन के विषय में जान पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी सम्बन्ध को समझ पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन की मजबूती और ग्रामीण विकास के साथ उसके सम्बन्ध पर जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन के महत्व को समझ पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास के बीच सम्बन्ध बारे में जान पायेंगे।
- 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के मुख्य प्रावधानों के विषय में जान पायेंगे।

6.2 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य

स्थानीय स्वशासन शासन की वह व्यवस्था है जिसमें निचले स्तर पर शासन के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हल करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ओर तो लोकतांत्रिक व्यवस्था सुनिश्चित करती है तो दूसरी ओर आम जनता को स्वयं अपनी समस्याओं के हल का मार्ग प्रशस्त करती है।

महात्मा गांधी ग्राम स्वराज के पक्षधर थे। भारत गावों का देश है, अतः गावों के विकास के बिना भारत की प्रगति सम्भव नहीं। गांधी जी गांवों को राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्र बनाना चाहते थे, ताकि निचले स्तर पर लोगों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। इसके लिए उन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी व मजबूत बनाने की वकालत की थी, जिसमें-

1. गांव के लोगों की गांव में अपनी शासन व्यवस्था हो व गांव स्तर पर स्वयं की न्याय प्रक्रिया हो।
2. ग्राम स्तरीय नियोजन, क्रियान्वयन व निगरानी में गांव के हर महिला पुरूष की सक्रिय भागीदारी हो।
3. किस प्रकार का विकास चाहिये या किस प्रकार के निर्माण कार्य हों या गांव के संसाधनों का प्रबन्धन व संरक्षण कैसे होगा? ये सभी बातें गांव वाले तय करेंगे।
4. गांव की सब तरह की समस्याओं का समाधान गांव के लोगों की भागीदारी से ही हो।
5. ऐसा शासन जहाँ लोग स्थानीय मुद्दों, गतिविधियों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकें।
6. स्थानीय स्तर पर स्वशासन को लागू करने का माध्यम गांव के लोगों द्वारा, मान्यता प्राप्त लोगों का समूह हो, जिन्होंने सम्पूर्ण गांव का विकास, व्यवस्था व प्रबन्धन करना है। ऐसा समूह जिसका निर्णय सभी को मान्य हो।

6.3 संविधान में संशोधन और स्थानीय स्वशासन

हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। पंचायतों के कार्य भी लगभग समान हैं, उनके स्वरूप में जरूर परिवर्तन हुआ है। पहले पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। उस समय वह संस्था के रूप में कार्य करती थी और गांव के झगड़े, गांव की व्यवस्थाऐं सुधारना, जैसे- फसल सुरक्षा, पेयजल, सिंचाई, रास्ते, जंगलों का प्रबन्धन आदि मुख्य कार्य हुआ करते थे। लोगों को पंचायतों के प्रति बड़ा विश्वास था। उनका निर्णय लोग सहज स्वीकार कर लेते थे और हमारी पंचायतें भी बिना पक्षपात के कोई निर्णय किया करती थी। ऐसा नहीं कि पंचायतें सिर्फ गांव का निर्णय करती थीं। बड़े क्षेत्र, पट्टी, तोक के लोगों के मूल्यों से जुड़े संवेदनशील निर्णय भी पंचायतें बड़े विश्वास के साथ करती थीं। इससे पता लगता है कि पंचायतों के प्रति लोगों का पहले कितना विश्वास था। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। जब लोग अपना शासन खुद चलाते थे, अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्याऐं स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे।

धीरे-धीरे ये पंचायत व्यवस्थाऐं आजादी के बाद समाप्त होती गई। इसका मुख्य कारण रहा, सरकार का दूरगामी परिणाम सोचे बिना पंचायत व्यवस्थाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप। जो छोटे-छोटे विवाद पहले हमारे गांव में हो जाते थे अब वह सरकारी कानून व्यवस्था से पूरे होते हैं। जिन जंगलों की हम पहले सुरक्षा भी करते थे और उसका सही प्रबन्धन भी करते थे अब उससे दूरियां बनती जा रही हैं और उसे हम अधिक से अधिक उपभोग करने की दृष्टि से देखते हैं। जो गांव के विकास सम्बन्धी नजरिया हमारा स्वयं का था, उसकी जगह सरकारी योजनाओं ने ले ली है। अब सरकारी योजनाएं राज्य या केन्द्र में बैठकर बनाई जाती हैं और गांवों में उनका क्रियान्वयन होने लगा। परिणाम यह हुआ कि लोगों की जरूरत के अनुसार नियोजन नहीं हुआ और जिन लोगों की पहुँच थी उन्होंने ही योजनाओं का उपभोग किया। लोग योजनाओं के उपभोग के लिए हर समय तैयार रहने लगे, चाहे वह उसके जरूरत की हो या न हो और उसको पाने के लिए व्यक्ति खींचातानी में लगा रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि कमजोर वर्ग धीरे-धीरे और कमजोर कमजोर होता गया और लोग पूरी तरह सरकार की योजनाओं और सब्सिडी(छूट) पर निर्भर होने लगे। धीरे-धीरे पंचायत की भूमिका गांव के विकास में शून्य हो गई। लोग भी पुरानी पंचायतों से कटते गये।

लेकिन 80 के दशक में यह लगने लगा कि सरकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँच पा रहा है। यह भी सोचा जाने लगा कि योजनाओं को लोगों की जरूरत के मुताबिक बनाया जाय। योजनाओं के नियोजन और क्रियान्वयन में भी लोगों की भागीदारी जरूरी समझी जाने लगी। तब ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी व्यवस्था कायम करने की आवश्यकता है, जिसमें लोग खुद अपनी जरूरत के अनुसार योजनाओं का निर्माण करें और स्वयं उनका क्रियान्वयन करें।

इसी सोच के आधार पर पंचायतों को कानूनी तौर पर नये काम और अधिकार देने की सोची गई। ताकि स्थानीय लोग अपनी जरूरतों को पहचानें, उसके उपाय खोजें, उसके आधार पर योजना बनाएं, योजनाओं को क्रियान्वित करें और इस प्रकार अपने गांव का विकास करें। इस सोच को समेटते हुए सरकार ने संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन कर पंचायतों को नये काम और अधिकार दे दिये हैं। इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकार की तरह पंचायतें भी स्थानीय लोगों में अपनी सरकार की तरह कार्य करने लगी।

6.4 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

स्थानीय स्वशासन में लोगों के हितों की रक्षा होती है तथा स्थानीय लोगों की सहभागिता से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनायी व लागू की जाती हैं। ग्रामीण विकास हेतु किये जाने वाले किसी भी कार्य में

स्थानीय एवं वाह्य संसाधनों का लोगों द्वारा बेहतर उपयोग किया जाता है। स्थानीय लोग अपनी समस्याओं एवं प्राथमिकताओं से भली-भाँति परिचित होते हैं तथा लोग अपनी समस्या एवं बातों को आसानी से रख पाते हैं। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था से लोगों की भागीदारी से जिम्मेदारी का अहसास होता है और स्थानीय स्तर की समस्याओं का निदान व विवादों का निपटारा लोग स्वयं करते हैं। गांव के विकास में महिलाओं, निर्बल, कमजोर एवं पिछड़े वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित होती है तथा वास्तविक लाभार्थी को लाभ मिलता है।

6.5 स्थानीय स्वशासन और पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थाऐं हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगी तथा उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है? कैसे क्रियान्वित करनी है? क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा? ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें, ताकि ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

6.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आई हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम हैं पंचायतें।

चूँकि पंचायतें स्थानीय स्तर पर गठित होती हैं, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का अचूक तरीका है। पंचायत में गांव के विकास हेतु स्थानीय लोग ही निर्णय लेते हैं, विवादों का निपटारा करतें हैं, स्थानीय मुद्दों के लिए कार्य करते हैं, अतः गांव की हर गतिविधि व कार्य में स्थानीय लोगों की ही भागीदारी रहती है। पंचायत द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है तथा स्थानीय लोगों को ही इसका लाभ मिलता है। अतः पंचायत स्थानीय लोगों के अधिकारों व हकों की सुरक्षा करती है।

स्थानीय स्वशासन की दिशा में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एक कारगार एवं क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन गांव के अन्तिम व्यक्ति की सत्ता एवं निर्णय में भागीदारी से ही स्थानीय स्वशासन की सफलता आंकी जा सकती है। स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव के हर वर्ग चाहे दलित हों अथवा जनजाति, महिला हो या फिर गरीब, सबकी समान रूप से स्वशासन में भागीदारी होगी। इसके लिये गांव के प्रत्येक ग्रामीण को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम अपने गांवों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना तभी कर सकते हैं जब गांव के विकास सम्बन्धी समुचित निर्णयों में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी होगी। लेकिन इस सबके लिये पंचायत व्यवस्था ही एकमात्र एक ऐसा मंच है जहाँ आम जन समुदाय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ मिलकर स्थानीय विकास से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं और सबके विकास की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं।

6.7 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा?

स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के लिए निम्नाकित कदम उठाने की आवश्यकता है-

1. स्थानीय स्वशासन की मजबूती के लिए सर्वप्रथम पंचायत में सुयोग्य प्रतिनिधियों का चयन होना आवश्यक है। पंचायत का नेतृत्व करने के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाना चाहिए, जिसकी स्वच्छ छवि हो व वह निःस्वार्थ भाव वाला हो।
2. सक्रिय ग्रामसभा पंचायती राज की नींव होती है। अगर ग्रामसभा के सदस्य सक्रिय होंगे व अपनी भूमिका तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होंगे तभी एक सशक्त पंचायत की नींव पड़ सकती है। अतः ग्रामसभा के हर सदस्य को जागरूक रह कर पंचायत के कार्यों में भागीदारी करनी चाहिए। तभी स्थानीय स्वशासन मजबूत हो सकता है।
3. स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भौतिक, प्राकृतिक, बौद्धिक, संसाधनों का बेहतर उपयोग एवं उचित प्रबन्धन से ही विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है। अतः स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पंचायतें अपनी स्थिति को मजबूत बना कर ग्राम व ग्रामवासियों के विकास को गति प्रदान कर सकती है।
4. स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांववासी अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं व कार्यक्रमों का नियोजन करेंगे व उनका स्वयं ही क्रियान्वयन करेंगे। उपर से थोपी गई परियोजनाएं कभी भी ग्रामीणों में योजना के प्रति अपनत्व की भावना नहीं ला सकती। अतः सूक्ष्म नियोजन के आधार पर ही योजनाएं बनानी होंगी तभी व, स्तविक रूप से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा।
5. पंचायतों की मजबूती का एक महत्वपूर्ण पहलू है, निष्पक्ष सामाजिक न्याय व्यवस्था व महिला पुरूष समानता को बढ़ावा देना। पंचायतें सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास को ग्राम स्तर पर लागू करने का माध्यम हैं। अतः समाज के वंचित, उपेक्षित व शोषित वर्ग को विकास प्रक्रिया मे भागीदारी के समान अवसर प्रदान करने से ही पंचायती राज की मूल भावना 'लोक शासन' को मूर्त रूप दे सकती है।
6. युवा किसी भी देश व समाज के लिए पूँजी हैं। इनके अन्दर प्रतिभा, शक्ति व हुनर विद्यमान है। इस युवा शक्ति व प्रतिभा का पलायन रोककर व उनकी शक्ति व उर्जा का रचनात्मक कार्यों में सदुपयोग किया जाए तो वे स्थानीय स्तर पर पंचायतों की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।
7. पंचायती राज की मजबूती के लिए सत्ता का वास्तविक रूप में विकेन्द्रीकरण अर्थात कार्य, कार्मिक व वित्त सम्बन्धित वास्तविक अधिकार पंचायतों को हस्तांतरित करना आवश्यक है। इनके बिना पंचायतें अपनी भूमिका व जिम्मेदारियों को सफलता पूर्वक निभाने में असमर्थ हैं।

6.8 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में सम्बन्ध

स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास के बीच में सम्बन्धों को समझाने के लिए निचे दिये गये बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास एक-दूसरे के पूरक हैं। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से गांव की समस्याओं को प्राथमिकता मिल सकती है व ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।
2. स्थानीय स्वशासन की आधारशिला पंचायत है। अतः पंचायत के माध्यम से गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी बढ़ती है।
3. ग्राम विकास की समस्त योजनाएं गांव के लोगों द्वारा ही बनाई जायेंगी व लागू की जायेंगी। इससे विकास कार्यों के प्रति सामूहिक सोच को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही स्थानीय समुदाय का विकास की गतिविधियों में पूर्ण नियन्त्रण।
4. ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व एवं सबको समान महत्व मिलने से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा। महिलाओं तथा कमजोर वर्गों की भागीदारी से ग्राम विकास की प्रक्रिया को मजबूती मिलेगी।
5. मजबूत स्थानीय स्वशासन से किसी भी प्रकार के विवादों का निपटारा गांव स्तर पर ही किया जा सकता है।
6. स्थानीय समुदाय की नियोजन व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से विकास जनसमुदाय व गांव के हित में होगा। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर सबके निर्णय द्वारा होगा। स्थानीय संसाधनों का समुचित विकास व उपयोग होगा तथा सामूहिकता का विकास होगा।

6.9 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहाँ स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

6.9.1 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है-

1. 73वें संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।
7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायतें 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनाएं स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अर्न्तगत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12. उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

कुल मिलाकर संविधान के 73वें संशोधन ने नवीन पंचायत व्यवस्था के अर्न्तगत न सिर्फ पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर, दलित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

6.9.2 चौहतरवें वें संविधान संशोधन में मुख्य बातें

चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है-

1. संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।
2. इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है।
3. नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुँच बढ़ाई गई है।

4. समाज के कमजोर वर्गों, जैसे महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।
5. 74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।
6. इस संविधान संशोधन की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुँचाना सुनिश्चित करना है।
7. देश में नगर संस्थाओं, जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।
8. नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।
9. नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।
10. समाज के कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिले।
11. प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करे, जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।
12. सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

6.10 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा प्रशासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सुदूर गावों तक विकास की प्रक्रिया का लाभ पहुँचाया जा सकता है। स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास करने के अलावा स्थानीय समस्याओं का बेहतर हल खोज पाना ही इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रहा है। नई पंचायती राज व्यवस्था से अनेक अपेक्षाएं हैं। इस आधार पर स्थानीय स्वशासन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. स्थानीय समस्याओं का निराकरण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा बेहतर तरीके से किया जाना।
2. लोगों की समस्याओं को समझना ओर उसके हल के लिए योजनाएं बनाना।
3. दुर्गम व दुरस्थ गावों तक राजनीतिक समझ को परिपक्व करना तथा राजनीतिक चेतना का विकास करना।
4. सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों का प्रशासन व विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना।
5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को राजनीतिक रुप से सक्रिय करना तथा उनका सर्वांगीण विकास करना।

किन्तु स्थानीय स्वशासन के लिए यह मार्ग चुनौतियों से भरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षों में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज की असफलता पर भी प्रश्न चिन्ह लगे हैं। वर्तमान में पंचायजी राज व्यवस्था के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी हैं-

1. स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष वित्तीय संसाधनों की कमी है, तथा उन्हें राज्यों के सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।
2. स्थानीय स्वशासी संस्थाएं विकास का साधन न होकर राजनीतिक दलों के प्रशिक्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं।
3. पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है, परन्तु महिलाएं आज भी इस व्यवस्था में स्वतंत्र होकर व स्व-निर्णय लेकर कार्य नहीं कर पा रही हैं।
4. पंचायती राज व्यवस्था में धन व शक्ति के दुरुपयोग के मामले भी सामने आते रहे हैं, इससे निपटना भी एक चुनौती पूर्ण कार्य है।

पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए जनता का जागरुक होना जरुरी है। साथ ही निर्वाचित प्रतिनिधियों को भी अपना दायित्व सक्रियता से निभाना होगा तथा उन्हें जाति, धर्म व सम्प्रदाय से ऊपर उठकर विकास कार्यों पर अपना ध्यान लगाना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. 73वां संविधान संशोधन किस से सम्बन्धित है।
   क. नगर निकायों से ख. पंचायतों से ग. शिक्षण संस्थाओं से घ. विधान सभाओं से
2. किस संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया?
3. कौन सा संविधान संशोधन नगर निकायों से सम्बन्धित है?
4. ग्राम स्वराज के पक्षधर थे?
   क. तिलक ख. महात्मां गांधी ग. जवाहर लाल नेहरु घ. सरदार पटेल
5. कौन सा संविधान संशोधन स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित है?

6.11 सारांश

शासन प्रणाली के उपलब्ध रुपों में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली सर्वोच्च व उत्तम है, क्योंकि इस शासन प्रणाली में जनता की भागीदारी सुनिश्चित रहती है। जनता की भागीदारी को अधिक मजबुत बनाने और शासन में उनकी पहुँच को सुलभ बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन की कल्पना को साकार करने के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संसोधन किया गया।

73वें संविधान संशोधन के द्वारा गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों, क्षेत्र स्तर पर क्षेत्र पंचायतों व जिला स्तर पर जिला पंचायतों 74वें संविधान संशोधन के द्वारा शहरी स्तर पर नगर पालिका, नगर परिषद, नगर पंचायत व नगर परिषदों का गठन कर स्थानीय स्वशासन को साकार रुप दिया गया। स्थानीय स्वशासन के इन रुपों के माध्यम से स्थानीय लोगों की शासन सत्ता में सीधी भागीदारी सुनिश्चित हुई है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से स्थानीय स्तर पर जनहित के कार्यों में सक्रियता, निचले स्तर पर शासन में भागीदारी और और समस्याओं का निराकरण, यहि स्थानीय स्वशासन का ध्येय है।

6.12 शब्दावली

संवर्द्धन- वृद्धि या विकास, वाह्य- बाहरी या अन्य, सूक्ष्म नियोजन- योजनाओं का छोटे रुप में लागू होना, त्रिस्तरीय- तीन स्तर

6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख. पंचायतों से, **2.** 73वां संविधान संशोधन, **3.** 74वां संविधान संशोधन, **5.** ख. महात्मां गाँधी, **6.** 73वां व 74वां संविधान संशोधन

6.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचायती राज प्रशिक्षण सन्दर्भ सामाग्री, 2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर, देहरादून।
2. पंचायती राज प्रशिक्षण मार्गदर्शिका, 2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर, देहरादून।
3. जल, जंगल व जमीन पर ग्राम पंचायतों के अधिकारों की नीतिगत स्तर पर पैरवी, 2002, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर, देहरादून एवं प्रिया संस्था नई दिल्ली।

6.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी।
2. भारत में पंचायती राज- डॉ0 के0 के0 शर्मा।
3. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन से क्या तात्पर्य है? स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करें।
2. स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता क्यों है? स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में सम्बन्धों की चर्चा करें।
3. 73वें व 74वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. स्थानीय स्वशासन की विशेषताओं और चुनौतियों को स्पष्ट करें।

इकाई- 7 सांस्कृतिक एवं भाषा विकास

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 उत्तराखण्ड की भाषा और साहित्य
    7.2.1 पहाड़ी हिन्दी
    7.2.2 कुमाऊँनी भाषा का विकास
7.3 लोक साहित्य
7.4 उत्तराखण्ड राज्य की सांस्कृतिक गतिविधियाँ
    7.4.1 राज्य साहित्य एवं कला परिषद
    7.4.2 साहित्य, संस्कृति व कला समितियां
        7.4.2.1 अभिलेख परामर्शदात्री समिति
        7.4.2.2 क्षेत्रीय अभिलेख सर्वेक्षण समिति
        7.4.2.3 क्रय समिति
    7.4.3 गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय
7.5 क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई
7.6 राज्य अभिलेखागार
    7.6.1 राज्य अभिलेखागार के मुख्य कार्य
    7.6.2 संरक्षित अभिलेख
7.7 संस्कृति भवन व संस्कृति संरक्षण का विभागीय प्रयास
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम राज्य की भाषा व संस्कृति के विकास पर चर्चा करेंगे। किसी भी राज्य की पहचान वहाँ की भाषा व संस्कृति से लगायी जा सकती है। उदाहरण के लिये हम पंजाब राज्य को लें तो वहाँ की संस्कृति व भाषा हमें वहाँ की सांस्कृतिक विरासत का परिचय स्वतः ही दे देती है। ऐसे ही समस्त राज्यों की भाषा व संस्कृति वहाँ की कार्यशैली को बताती हैं। ठीक इसी तर्ज पर उत्तराखण्ड की संस्कृति भी राज्य की अपनी अनूठी संस्कृति का परिचय देती है। राज्य की भाषा व संस्कृति को लेकर उत्तराखण्ड राज्य सरकार द्वारा भी अनेकों प्रयास किये जा रहें हैं।

राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक, ऐतिहासिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास तथा उनको प्रोत्साहित करने के लिये राज्य सरकार द्वारा उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य एवं कला परिषद बनायी गयी है। इस परिषद के माध्यम से

संस्कृति के सभी पहलुओं के विकास के लिये इस क्षेत्र के अनुभवी विशेषज्ञों के सहयोग से कार्य किया जा रहा है। राज्य की सभी सरकारें इस प्रयास में रहीं हैं कि अनादिकाल से विख्यात इस क्षेत्र की संस्कृति, कला एवं साहित्य को संजोकर रखा जाये। साथ ही आने वाली पीढ़ियों के लिये इसका समुचित अभिलेखीकरण भी किया जाये।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- उत्तराखण्ड में भाषा के इतिहास के बारे में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड का लोक साहित्य व उसके महत्व के बारे में समझ पायेंगे।
- संस्कृति विभाग व उसकी समितियों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- कला परिषदें, अभिलेखागार व संग्राहलयों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

7.2 उत्तराखण्ड की भाषा और साहित्य

उत्तराखण्ड की भाषा हिन्दी, संस्कृत, पालि-अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। समय-समय पर विविध सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, राजनीतिक परिस्थितियों ने हिन्दी को एक विशाल भू-प्रदेश में फैलने का अवसर प्रदान किया। डॉ0 ग्रियसन के अनुसार, 'हिन्दी भाषा का क्षेत्र पश्चिम में अम्बाला (पंजाब) से लेकर, पूर्व में बनारस, उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में कालाघाट तक विस्तृत है।'

7.2.1 पहाड़ी हिन्दी

हिन्दी में प्रायः किसी देश विशेष, स्थान विशेष अथवा प्रान्त विशेष के निवासियों के लिए तथा भाषा या बोली के साथ उसका सम्बन्ध सूचित करने के लिए सम्बन्धित देश अथवा प्रान्त अथवा बोली के साथ 'ई' प्रत्यय जोड़ देने की परम्परा चली आ रही है, जैसे कश्मीरी, पंजाबी, बंगाली। पहाड़ शब्द पर 'ई' प्रत्यय जोड़कर पहाड़ी शब्द बना है जो निवासी और भाषा अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। कश्मीर की दक्षिण-पूर्व सीमा पर भद्रवाह से नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जाने वाली भारतीय आर्य भाषा परिवार से सम्बन्धित प्रायः सभी बोलियां पहाड़ी उपभाषा के अन्तर्गत आ जाती है।

पहाड़ी हिन्दी में तीन बोलियों को सम्मिलित किया गया है- 1. पूर्वी पहाड़ी, 2. मध्य पहाड़ी, 3. पश्चिमी पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी की मुख्य भाषा नेपाली है। इसे गोरखाली नाम से भी जाना जाता है। यह नेपाल की राजभाषा है। इसकी लिपि देवनागरी है।

मध्य पहाड़ी हिन्दी की दो प्रमुख बोलियां हैं- कुमाऊँनी और गढ़वाली। सामान्यतः पहाड़ी हिन्दी से अभिप्रायः उस उपवर्ग से लिया जाता है जिसे डॉ0 ग्रियसन ने मध्य पहाड़ी नाम दिया है। मध्य पहाड़ी की बोलियां कुमाऊँनी और गढ़वाली क्रमशः कुमाऊँनी और गढ़वाली में बोली जाती है। यह भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं।

7.2.2 कुमाऊँनी भाषा का विकास

कुमाऊँ की बोली 'कुमाऊँनी' नाम से जानी जाती है। कुमाऊँ शब्द का सम्बन्ध कूमांचल या कूर्मांचल से है। कुमाऊँनी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। कुमाऊँनी के प्राचीनम नमूने शक सम्वत् 1266 अर्थात् चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से मिलते हैं। शिलालेखों और ताम्रपत्रों में उपलब्ध प्राचीन कुमाऊँनी के नमूनों मे संस्कृत शब्दों के प्रयोग की प्रवृति लक्षित होती है। कुमाऊँनी भाषा की विकास यात्रा को तीन भागों में विभाजित किया जा

सकता है- आदिकाल (14वीं सदी से 1800 ई0), मध्यकाल (1800 वीं सदी से 1900 ई0) तथा आधुनिक काल (1900 वीं सदी से वर्तमान तक)

1. **आदिकाल (14वीं सदी से 1800 ई0)-** आदिकाल की कुमाऊँनी बोली में संस्कृत शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता था। परन्तु 18वीं सदी तक आते-आते संस्कृत निष्ठा के स्थान पर तद्भव शब्दों की ओर झुकाव बढ़ा और कहीं-कहीं अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त होने लगे।
2. **मध्यकाल (1800 वीं सदी से 1900 ई0)-** इस काल में गुमानी पन्त जैसे प्रतिष्ठित कवि कुमाऊँनी में काव्य की रचना करने लगे थे। सन् 1815 में कुमाऊँ को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया और इसी बोली को पत्राचार की हेतु अपनाया।
3. **आधुनिक काल (1900 वीं सदी से वर्तमान तक)-** बीसवीं सदी की कुमाऊँनी पहले की कुमाऊँनी से एकदम अलग हो गई। 'अल्मोड़ा अखबार' अंचल आदि समाचार-पत्रों के प्रकाशन ने इसके विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी की एक उपबोली होने के कारण इसके लिखित स्वरुप एवं बोलचाल में हिन्दी का बहुत प्रभाव पड़ा है। अब तो यह सरल से सरलतम हो गयी है।

ग्रियसन ने भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए पहाड़ी समुदाय में केन्द्रीय उपभाषा के अन्तर्गत कुमाऊँनी के साथ गढ़वाली बोली को भी लिया है। गढ़वाली बोली की उत्पत्ति के विषय में भाषा शास्त्रियों के विचारों में मतभेद है। डॉ0 भोलाशंकर व्यास, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा गढ़वाली की मूल उत्पत्ति शुद्ध 'शौरसेनी' से मानते हैं, परन्तु डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी का मत पहाड़ी भाषाओं के सम्बन्ध में एकदम भिन्न है। वे इनकी उत्पत्ति 'दश' या 'खश' से मानते हैं। वास्तव में उनकी इस स्थापना का आधार मात्र यही है कि 'खश' भी गढ़वाल के निवासी थे। और 'खश' दरद वंशीय माने गये हैं। किन्तु यदि गढ़वाली भाषा और दरद भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो दोनों में काफी अन्तर मिलेगा। मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'साइन्स ऑफ लैंग्वेज' में गढ़वाली को प्राकृतिक भाषा का एक रुप माना है। बालकृष्ण शास्त्री ने अपनी 'बनक वंश' पुस्तक में यह उल्लेख किया है कि गढ़वाल में संस्कृत बहुत दिनों तक रही। हरिराम धस्माना ने यह उल्लेख किया कि गढ़वाली में कई शब्दों का प्रयोग वैदिक रुप में ही होता रहा है।

7.3 लोक साहित्य

राज्य के उत्तर-पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों को छोड़कर सम्पूर्ण क्षेत्र में कुमाऊँनी भाषा बोली जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इसकी उपबोलियां अभिव्यक्ति का माध्यम हैं, जिसमें शौका, थारु, राजी तथा बोक्साड़ी प्रमुख हैं। कुमाऊँनी भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। डॉ0 ग्रियसन ने कुमाऊँनी भाषा की प्रकृति का अध्ययन कर इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है। भाषाविदों ने दरद-पहाड़ी को कुमाऊँनी भाषा का मूल श्रोत माना है। ध्वनि, रुप-रचना तथा वाक्य विन्यास की दृष्टि से कुमाऊँनी शौरसेनी अपभ्रंश के निकट है। इस कारण इसका सम्बन्ध संस्कृत से निर्धारित होता है। कुमाऊँनी भाषा क्षेत्रीय आधार पर खड़ी बोली हिन्दी से अत्याधिक प्रभावित हैं। श्री देव सिंह पोखरिया तथा मथुरा दत्त मठपाल ने कुमाऊँनी भाषा के विकास में महत्तवपूर्ण भूमिका निभायी है। मथुरा दत्त मठपाल ने कुमाऊँनी भाषा में 'दुदबोली' नामक पत्रिका का सम्पादन कर इसके विकास में अपना योगदान दिया। कुमाऊँनी बोली को ध्वनि तथा उच्चारण के आधार पर चार भागों में विभाजित किया जाता हैं। ये हैं- कुमय्यां, सौयोली, सीराली तथा असकोटी।

मानव और साहित्य दोनों का प्राचीनकाल से अटूट सम्बन्ध रहा है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। गढ़वाल का लोक साहित्य अपनी गौरवमयी परम्पराओं को अक्षुण्ण रखते हुए जीवन्त है। काव्य के विविध अंगों,

रस, छंद, अलंकार, भाव माधुर्य आदि से गढ़वाली लोक साहित्य पूर्ण है। यह लोक जीवन के विविध रुपों को दर्शाता है। गढ़वाल के वैभवशाली अतीत की परछाईयां हमें लोक साहित्य में देखने को मिलती है।

वर्तमान में लिखित साहित्य को ही साहित्य मानने की परम्परा है, किन्तु लोक साहित्य को भी साहित्य की श्रेणी में लेना चाहिये, क्योंकि यह जनसामान्य से जुड़ा है और साहित्य के वास्तविक उद्देश्य का दायित्व निर्वाह करता है। वास्तव में लोक साहित्य जितना जन मानस को प्रभावित करता है, उतना लिखित साहित्य नहीं। गढ़वाली भाषा में लिखित साहित्य का आरम्भ सन् 1750 के लगभग माना जाता है। गढ़वाली के आरम्भिक कवियों में हरिकृष्ण दोर्गादत्ति, रुड़ौला, हर्षपुरी और लीलानन्द कोटनाला के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् 1905 में 'गढ़वाली' पत्र के प्रकाशन से लोगों का ध्यान गढ़वाली भाषा की ओर विशेष रुप से आकर्षित हुआ।

7.4 उत्तराखण्ड राज्य की सांस्कृतिक गतिविधियां

राज्य की सांस्कृतिक विरासत तथा परम्पराओं को विकसित करने के लिए सरकार सतत् प्रयासरत है। उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति का प्रतीक केन्द्र हैं। यहाँ की समृद्ध परम्परा देश को ही नहीं, बल्कि विदेशों में बसे भारतीयों को भी गौरवान्वित करती है। संस्कृति विभाग का उद्देश्य राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का रखरखाव व संवर्द्धन है। संस्कृति विभाग द्वारा कला एवं संस्कृति को मनोरंजन की चितपरिचित सीमाओं से उपर ले जा कर सुविचारित कल्पनाओं के आधार पर सकारात्मक दिशा के लिये प्रयास किये जाते हैं। उत्तराखण्ड सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि प्रदेश की अपनी इन्हीं विरासतों से राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग पहचान बना सके। राज्य में साहित्य, संस्कृति व भाषा, संगीत, लोकगीतों के संरक्षण के लिये समितियों का गठन किया गया है-

7.4.1 राज्य साहित्य एवं कला परिषद

राज्य में साहित्य, कला व सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं सुनियोजित विकास की दृष्टि से मार्ग निर्देश गठित किये जाने के उद्देश्य से राज्य साहित्य व कला परिषद का गठन किया गया है। इसका कार्यालय देहरादून में है। इस परिषद के उद्देश्य निम्न हैं -

1. राज्य में साहित्य एवं कला विशेष रूप से प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, संवर्द्धन तथा सुनियोजित विकास हेतु राज्य सरकार को परामर्श देना।
2. राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करना ।
3. राज्य में साहित्य, कला व भाषा के विकास हेतु राज्य व राज्य के बाहर इन क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों से प्रभावी समन्वय तथा सहयोग प्राप्त करना।
4. हिन्दी व स्थानीय भाषा व बोलियों का विकास करना।
5. संगीत, नृत्य, नाटक, ललित कला, सृजनात्मक साहित्य (स्थानीय भाषाओं/बोलियों के साहित्य) का प्रकाशन करना व इसे जनसुलभ बनाने हेतु प्रयास करना।
6. राज्य में साहित्य व सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़ी पात्र स्वायत्तशासी संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
7. सांस्कृतिक गतिविधियों एवं राज्य की सांस्कृतिक विरासत के सुनियोजित विकास तथा संरक्षण के उद्देश्य से राज्य सरकार, केन्द्र सरकार तथा अन्य सभी से वित्त निवेश प्राप्त करना। इस हेतु यथा आवश्यकता परिषद द्वारा राज्य सरकार को प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

8. साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कला से सम्बन्धित बैठकों, प्रदर्शनियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना।
9. लोक कला, भाषा विकास, कला को अन्य व्यावसायिक गतिविधियों से उत्तराखण्ड के स्थानीय कलाकारों व रचनाकारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु प्रयास करना।

7.4.2 साहित्य, संस्कृति व कला समितियां

संस्कृति, साहित्य एवं कला से सम्बन्धित विभिन्न विधाओं के लिये महत्तवपूर्ण सुझाव देने के लिये उत्तराखण्ड साहित्य एवं कला परिषद की तीन समितियों का गठन किया गया है। इन समितियों के कार्य निम्न हैं -

1. इन समितियों द्वारा अपने क्षेत्र की विभिन्न विधाओं के सुनिश्चित एवं समग्र विकास के लिए तात्कालिक एवं दूरगामी रणनीति तैयार की जाती है।
2. इन समितियों द्वारा अपने अपने क्षेत्रों में क्रियान्वित कराये जाने वाली योजनाओं के प्रस्ताव भी तैयार किए जाते हैं। साथ ही यह भी मार्गदर्शन दिया जाता है कि सम्बन्धित योजना पर कितना व्यय-भार आएगा व किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।
3. इसके अतिरिक्त संस्कृति विभाग के सामान्य कार्य-कलापों एवं अवस्थापना सुविधाओं को और अधिक उपयोगी बनाये जाने हेतु इन समितियों द्वारा सुझाव दिए जाते हैं।
4. विभिन्न योजनाओं में शासन से प्राप्त होने वाले धन के अतिरिक्त धनराशि के अन्य सम्भावित क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी इन समितियों द्वारा मार्गदर्शन किया जाता है।

7.4.2.1 अभिलेख परामर्शदात्री समिति

प्राचीन, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दस्तावेजों एवं पाण्डुलिपियों को संरक्षित रखने तथा उसके अनुसंधान को दिशा देने के उद्देश्य से अभिलेख परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया है। इस समिति के द्वारा निम्न कार्य किये जाते हैं-

1. उत्तराखण्ड राजकीय अभिलेखागार के सुधार रुप में संचालन हेतु राज्य सरकार को समय-समय पर परामर्श देना।
2. प्राचीन हस्तलिखित ऐतिहासिक ग्रंथों एवं अभिलेखों की उत्तराखण्ड राज्य में खोज व अनुसंधान करना।
3. ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथों एवं अभिलेखों की प्रति प्राप्त करना, जिन्हें लोग राजकीय अभिलेखागार को नहीं देना चाहते।
4. प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों एवं अभिलेखों को वैज्ञानिक संरक्षण एवं इनको शोध कार्य हेतु उपलब्ध कराना तथा उसकी प्राप्ति सूची, कैलेण्डर, कैटलॉग आदि प्रकाशित करना।
5. राज्य की जनता को अभिलेखों के महत्व के प्रति जागरुक दायित्व बोध कराने का प्रयास करना।
6. व्यक्तिगत अधिकार में रखे अभिलेखों एवं ग्रन्थों के वैज्ञानिक विधि से संरक्षण के लिए परामर्श देना।
7. उक्त परामर्शदात्री समिति ऐसे सदस्यों को भी समय-समय पर मनोनीत कर सकती है, जिनकी सलाह की उन्हें आवश्यकता हो।

7.4.2.2 क्षेत्रीय अभिलेख सर्वेक्षण समिति

इस समिति का कर्तव्य है कि हस्तलिखित ग्रन्थों, विशेषकर ऐतिहासिक एवं अभिलिखित तथा किसी महान व्यक्ति द्वारा लिखित ग्रन्थ या पत्र का सर्वेक्षण एवं उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करना।

7.4.2.3 क्रय समिति

विभिन्न प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ, अभिलेख, माइक्रोफिल्म की प्रति या नोट आदि जो समिति को दान स्वरुप या क्रय के रुप में प्राप्त होने पर, वह सरकार की सम्पत्ति होती है और राज्य अभिलेखागार में संरक्षित होती है। उत्तराखण्ड राज्य अभिलेखागार द्वारा प्रदेश में अभिलेखों एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का सर्वेक्षण किया जाता है। क्रय समिति इन हस्तलिपियों तथा दस्तावेजों के क्रय की निगरानी करती है।

7.4.3 गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय

अल्मोड़ा स्थित इस संग्राहलय का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन धरोहरों को सुरक्षित व संरक्षित रखना तथा इसका प्रदर्शन करना है। राजवंशों व शासकों के ऐतिहासिक पुरावशेष इस क्षेत्र में यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। इस क्षेत्र में बिखरी अपार सांस्कृतिक सम्पदा के संग्रह, अनुरक्षण, अभिलेखीकरण, प्रदर्शन एवं उन पर शोध करने के उद्देश्य से सन् 1979 में उत्तराखण्ड की प्रसिद्ध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक नगरी अल्मोड़ा में संग्रहालय की स्थापना की गयी थी। इस संग्राहलय में उत्तराखण्ड तथा उससे जुड़े विभिन्न क्षेत्रों की लगभग 3000 से अधिक महत्वपूर्ण कलाकृतियों का संग्रह है। आरक्षित संग्रह के अतिरिक्त संग्राहलय की पाँच वीथिकाओं को सुरूचिपूर्ण एवं वैज्ञानिक तरीके से प्रदर्शित किया गया है।

7.5 क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई

राज्य में मानव सभ्यता का विकास पाषाण काल से ही पल्लवित हुआ है। इससे सम्बन्धित राज्य के पर्वतीय दुर्गम अंचल में यहाँ की प्राचीन संस्कृति के रूप में चित्रित शैलाश्रय, ताम्रमानवाकृतियां, प्राचीन मंदिर, मस्जिद, चर्च, बावड़ी जल धारा, कोट, किले, धर्मशालायें, शुद्ध एवं मिश्रित धातुओं के बने सिक्के आदि बहुलता से यत्र-तत्र मिलते हैं। क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई द्वारा पुरा सम्पदाओं का सर्वेक्षण तथा अनुसंधान निरन्तर किया जाता है। गढ़वाल मण्डल के अर्न्तगत अवस्थित पुरातात्विक स्मारकों की बहुलता को देखते हुए वर्ष 1984 में तत्कालीन शासन द्वारा गढ़वाल मण्डल के लिये एक प्रथक पुरातत्व इकाई की स्थापना की गयी।

कुमाऊँ में पुरातत्व इकाई अल्मोड़ा कार्यालय सन् 1976 से है। क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई के निम्न उद्देश्य हैं।

1. पुरा सम्पदा का सर्वेक्षण।
2. पुरा स्थलों का उत्खनन।
3. पुरा सम्पदा का संरक्षण तथा अनुरक्षण।
4. पुरातत्व एवं पुरास्थलों के प्रति लोकरूचि जगाने हेतु जागरूकता अभियान चलाना।
5. पुरातत्व विषयक प्रकाशन एवं वार्षिक समीक्षात्मक रिपोर्ट का प्रकाशन करना।

7.6 राज्य अभिलेखागार

वर्ष 1958 तक अभिलेखागार, शिक्षा विभाग उत्तर-प्रदेश के अधीन रहा। तदोपरान्त प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 1975 में इसे 'इण्डोलॉजी और संस्कृति विभाग' के अधीन स्थापित कर दिया गया। वर्ष 1973 में लखनऊ के आधुनिक अभिलेखागार में स्थानान्तरित कर दिया गया। अभिलेखागार के वृहद कार्यक्षेत्र को देखते हुए इसकी इकाईयां इलाहाबाद, वाराणसी, देहरादून तथा नैनीताल में स्थापित कर दी गयी। क्षेत्रीय अभिलेखागार, देहरादून की सन् 1980 में स्थापना, राज्य की पर्वतीय विकास योजना के अन्तर्गत की गयी।

7.6.1 राज्य अभिलेखागार के मुख्य कार्य

राज्य अभिलेखागार के प्रमुख कार्य निम्न हैं -

1. उत्तराखण्ड के सभी सरकारी कार्यालयों तथा विभागों के अभिलेखों का निरीक्षण, सूचीकरण एवं अभिलेखों का अभिलेखागार में स्थानान्तरण करना।
2. सभी कार्यालयों तथा विभागों, स्वायत्तशासी संस्थाओं एवं व्यक्तिगत अधिकार में रखे गये अभिलेखों को वैज्ञानिक संरक्षण करने एवं सुव्यवस्थित रखने सम्बन्धित परामर्श देना।
3. शोध छात्रों एवं जनसामान्य के उपयोग के लिये अभिलेखागार में उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों का चयन कर उनकी सूची बनाकर प्रकाशित करना।
4. अभिलेखों को जिला, विभाग एवं क्षेत्र के अनुसार सुव्यवस्थित ढंग से रखते हुए अभिलेखागार में संरक्षित करना।
5. शोध छात्र व जनसामान्य को शोध अभिलेख तथा पत्रिकाएं उपलब्ध कराना। शोध छात्रों को आवश्यकता अनुसार अभिलेखों की छायाप्रति उपलब्ध कराना।
6. जनसामान्य को अभिलेखों के महत्व के प्रति जागरूक करने हेतु समय-समय पर अभिलेख प्रदर्शनियों का आयोजन कराना। साथ ही उत्तराखण्ड के विद्यार्थियों मे स्थानीय सामाजिक, आर्थिक व सामयिक विषयों के प्रति रूचि बढ़ाने के उद्देश्य से सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करना।
7. विभिन्न स्रोतों से प्राप्त अभिलेखों की वैज्ञानिक विधियों द्वारा मरम्मत करके इन्हें स्थाई रूप में संरक्षित करना।
8. राज्यकर्मियों को अभिलेखीय संरक्षण सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान करना। मौखिक अभिलेखों का संरक्षण करना।
9. स्थानान्तरित अभिलेखों का संरक्षण।
10. व्यक्तिगत अभिलेखों को दान स्वरूप प्राप्त करना।

7.6.2 संरक्षित अभिलेख

राज्य अभिलेखागार उत्तराखण्ड में वर्ष 1816 से वर्ष 1957 तक के देहरादून के प्री-म्यूटिनी, पोस्ट-म्यूटिनी, स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित अभिलेख कलेक्ट्रेट टिहरी गढ़वाल के वर्ष 1939-49 तक के अभिलेख संरक्षित किये गये हैं। क्षेत्रीय अभिलेखागार कार्यालय में संरक्षित अभिलेख, आयुक्त कुमाऊँ मण्डल नैनीताल से स्थानान्तरित वर्ष 1880 से 1921 तक के पोस्ट-म्यूटिनी रिकार्ड, वर्ष 1805 से 1944 तक राजस्व नक्शे एवं जिलाधिकारी कार्यालय, नैनीताल से स्थानान्तरित वर्ष 1928 से 1941 तक की फाइलें व सन् 1880 से 1948 तक के पोस्ट म्यूटिनी अभिलेख संरक्षित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से दान स्वरूप प्राप्त अभिलेखों में प्राचीन डायरियां, पत्र, साहित्यिक लेख जो वर्ष 1896 से 1980 तक के हैं। साथ ही राष्ट्रपिता माहात्मा गांधी, पं0 गोविन्द बल्लभ पंत, सरलाबेन, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के हस्तलिखित विभिन्न अभिलेख भी यहाँ संरक्षित हैं।

7.7 संस्कृति भवन व संस्कृति संरक्षण का विभागीय प्रयास

संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड का एक मात्र प्रेक्षागृह मण्डल मुख्यालय, पौड़ी में स्थित है। यह एक बहुउद्देश्यीय प्रेक्षागृह है। जिसमें 44 सीटों की आधुनिकतम कार्यशाला है। इसका उपयोग वर्तमान समय में क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई, गढ़वाल मण्डल, पौड़ी द्वारा भातरखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय की कक्षाओं के संचालन हेतु किया जा रहा है। इस प्रेक्षागृह का उपयोग हर सरकारी व गैर-सरकारी बैठकों के लिये किया जाता है। संस्कृति विभाग उत्तराखण्ड , हर वर्ष बद्री-केदार उत्सव का आयोजन करता है। इस बद्री केदार उत्सव में जहाँ एक ओर

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों द्वारा प्रतिभाग किया जाता है, वहीं दूसरी ओर उत्तराखण्ड की परम्परागत समृद्ध संस्कृति पर आधारित कार्यक्रमों का भी प्रदेश के उत्कृष्ट कलाकारों द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति के विविध आयामों के संरक्षण व संवर्द्धन में संलग्न है। क्योंकि हमारी वर्तमान पीढ़ी आधुनिकता के आकाश को छूते हुए भी अपनी परम्पराओं की भूमि को न छोड़ें, इसके लिये आवश्यक है कि संस्कृति का समय-समय पर सिंचन हों। इसी का प्रयास बद्री-केदार महोत्सव के द्वारा किया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. पहाड़ी हिन्दी में कितनी बोलियाँ सम्मिलित हैं?
2. मध्य पहाड़ी हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ कौन-कौन सी हैं?
3. मैक्समूलर की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है?
4. गढ़वाली भाषा साहित्य का आरम्भ कब से माना जाता है?
5. राज्य में साहित्य, संस्कृति, भाषा, संगीत व लोकगीतों के संरक्षण के लिये कितनी समितियों का गठन किया गया है?
6. गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय कहाँ स्थित है?

7.8 सारांश

भाषा किसी भी समाज की पहचान होती है। भाषा का वृहद रूप वहाँ की भाषाई संस्कृति को जन्म देती है। एक ही क्षेत्र में कई तरह से भाषा को बोला जाता है। भाषा की क्षेत्रीय पहचान बोलियों के रूप मे हमारे सामने आती है। किसी भी समाज में बोली जाने वाली बोली उस समाज की संस्कृति से परिचय कराती हैं। उत्तराखण्ड राज्य में हिन्दी के साथ-साथ कई अन्य भाषाऐं व बोलियां प्रचलित हैं, जो हमारी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर हैं। जिस तरह राज्य में भौगोलिक विभिन्नताऐं हैं, ठीक उसी तरह भाषा और बोलियों को लेकर भी अनेकों विभिन्नताऐं हैं। राज्य के दोनों छोरों पर अपनी सुन्दर व अनूठी बोली की पहचान लिये जनजातियां हैं, तो दूसरी तरफ मध्य में कुमाऊँनी, गढ़वाली, पंजाबी, पूर्वी व अन्य बोलियों के साथ कई जातियां इस अनूठी सांस्कृतिक धरा पर अपने रंग बिखेरती है। वहीं विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक धरोहरें राज्य को पर्यटकों के लिये और आकषर्ण पैदा करती हैं। देश के विभिन्न प्रान्तों में आयोजित होने वाले उत्सवों एवं मेलों के माध्यम से भी प्रदेश की समृद्ध संस्कृति को प्रचारित करने का कार्य सरकारों द्वारा किया जाता रहा है, जिससे उत्तराखण्ड की संस्कृति की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर राज्य बनने के बाद नये रूप में उभरी है।

7.9 शब्दावली

संरक्षण- सुरक्षा या बचाव, प्रेक्षागृह- ऐसा स्थान जहाँ कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करता है। ये स्थान बैठकों व अन्य कार्यों में भी काम आता हैं।, स्वायत्तशासी- अपने अधिकार में रहने वाला शासन। जिस पर सरकार या किसी वाह्य शक्ति का कोई अधिकार नहीं होता।,संवर्द्धन- किसी वस्तु, सामग्री को सुरक्षित रखना। बढ़ाना या पालना।, म्यूटिनी- विद्रोह, क्रान्ति या गदर।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तीन, **2.** कुमाऊँनी और गढ़वाली, **3.** साइन्स ऑफ लैंग्वेज, **4.** सन् 1750 के लगभग, **5.** तीन, **6.** अल्मोड़ा

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भवानी दत्त उप्रेती- कुमाऊँनी भाषा का अध्ययन।
2. चन्द्र सिंह चौहान एवं भट्ट- मल्ल तथा मध्यकालीन उत्तराखण्ड।
3. बद्री दत्त पाण्डे – कुमाऊँ का इतिहास।
4. सुन्दर लाल बहुगुणा- उत्तराखण्ड में एक सौ बीस दिन।

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सविता मोहन व हरीश यादव- उत्तरांचल समग्र अध्ययन।
2. विद्या दत्त बलूनी- उत्तराखण्ड एक सम्पूर्ण अध्ययन।
3. उत्तराखण्ड शासन- संतुलित समयबद्ध समग्र विकास, पांचवीं वर्षगांठ।
4. पहाड़- संपादक, शेखर पाठक।

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य अभिलेखागार के प्रमुख कार्यों को समझातें हुए संरक्षित अभिलेख के बारे में जानकारी दीजिए।
2. साहित्य, संस्कृति व कला समितियां क्या हैं? इनके प्रमुख कार्य कौन-कौन से हैं?
3. राज्य साहित्य व कला परिषद के प्रमुख कार्यों को बताईये।
4. उत्तराखण्ड के लोक साहित्य पर एक निबन्ध लिखिये।
5. उत्तराखण्ड की भाषा व साहित्य पर प्रकाश डालिये।